Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

|| ओ३म् ||

कर्म - फल प्रश्नोत्तरी

यानन्द सरस्वती

हित्याचार्य बलदेवाग्निहोत्री

एवं यशपाल आर्यबन्धु

R
954.2
DAY-K

आर्य-समाज, हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
विषय संख्या २५.१ / १४० आगत नं० ८६०२
लेखक बलदेव अग्निहोत्री
शीर्षक कर्म-फल प्रश्नोत्तरी

सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8902

॥ ओ३म् ॥

प्रस्तावना

8902

गत कई वर्षों से आर्य समाज [illegible] अपने वार्षिकोत्सवों पर सद्साहित्य [illegible] की भेंट आर्य जगत को करता आ रहा है। इसी परम्परा में प्रस्तुत पुस्तक छब्बीसवें वर्ष की भेंट स्वरूप सादर समर्पित है। कर्म फिलास्फी पर विभिन्न विद्वानों द्वारा आर्षमत फुटकर लेखों के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे जा चुके हैं। यथा महात्मा नारायण स्वामी कृत "कर्म-रहस्य", आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री कृत "कर्म-मीमांसा", पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय कृत "कर्म-फल-सिद्धांत", महा० प्रभु आश्रित कृत "कर्म भोग चक्र", बाबू पूर्ण चन्द्र कृत "कर्म व्यवस्था" स्वामी अखिलानन्द कृत "कर्म-सिद्धान्त" आदि आदि। इतना कुछ लिखा जा चुकने पर भी प्रस्तुत विषय पर अभी बहुत कुछ लिखा जाना शेष है। सत्य तो यह है कि कर्म का विषय ही इतना महत्वपूर्ण, गम्भीर, जटिल तथा विस्तृत है कि इस पर जितना भी लिखा जाये थोड़ा है।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी
DONATION

दुःख है कि कर्म विज्ञान का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ महा० नारायण स्वामी द्वारा लिखित "कर्म रहस्य" हम आर्यों की अकर्मण्यता का शिकार हो गया है एवं सम्प्रति बाजार में उपलब्ध नहीं। भले ही कुछेक पुराने पुस्तकालयों में एक-आध प्रति जीर्ण-क्षीण अवस्था में मिल जावे। यह बहुमूल्य ग्रन्थ सन् १९३८ में आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में सभा द्वारा प्रकाशित एवं बाबू चांद मल चण्डक के प्रबन्ध में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से मुद्रित हुआ था। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि कर्म-

954.2/42,B 23F
8902
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त से सम्बन्धित ऐसी उत्तम पुस्तक अन्य कोई भी अब तक प्रकाशित नहीं हुई है। अतः आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, सार्वदेशिक सभा अथवा अन्य आर्य प्रकाशकों को इस पुस्तक के प्रकाशन पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

उपरोक्त अप्राप्य पुस्तक तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की कर्म सम्बन्धी ऋषि-सम्मत वैदिक मान्यताओं, तथा स्वयं महर्षि के एतद् विषयक यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे विचार सुमनों को एक गुलदस्ते में संजो कर प्रस्तुत करने तथा प्रकाश में लाने के अभिप्राय से मेरा यह तुच्छ प्रयत्न है।

आशा है सुधि पाठकों को विचारने के लिये, प्रस्तुत पुस्तक पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करा सकेगी। गुरुवर आचार्य बलदेव जी अग्निहोत्री का, मार्ग दर्शन हेतु अत्यन्त आभारी हूं। आर्य समाज हरथला कालोनी के अधिकारीगण साहित्य प्रकाशन के लिये बधाई के पात्र हैं।

विनीत—
यशपाल आर्य बन्धु
सत्यार्थ भास्कर
आर्य समाज हरथला रेलवे कालोनी,
मु रा दा बा द

दिनांक १०-१०-७६

आवश्यक निवेदन

यजुर्वेद के अन्तिम ४० वें अध्याय के दूसरे मन्त्र 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' को लक्ष्य में रखकर ही कभी श्री सम्पूर्णानन्द जी ने वेदमन्त्र से गीता बन सकने की बात कही थी। क्योंकि इसमें कर्त्तव्य दृष्टि से न कि फलाशा से, दीर्घकाल तक कर्म करते हुए, चिरञ्जीविता को नर में लेप अथवा बन्धन का कारण नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा है और इसी के अनुसरण में गीता में भी कहा गया है कि यज्ञार्थ कर्म से अन्यत्र यह लोक कर्म बन्धन है अर्थात् यज्ञार्थ कर्म कर्त्तव्य तो निष्काम भाव से करने ही चाहिए तभी मनुष्य देह धारी की 'मत्वा कर्माणि सीव्यति' निरुक्तोक्ति के अनुरूप मनुष्यता है और वही तर्क सिद्ध है।

आज आस्तिक जगत् में भी अनेकत्र किसी Action के Judgment और Effect में कोई भेद न समझा जाकर कर्म फल सिद्धान्त के विषय में बहुत सी गड़बड़ियाँ छा गई हैं और कुछ आर्योपदेशक भी महर्षि की तथाघटित मृत्यु में महर्षि के इस जन्म के कर्मों के विषय में अपना मुख न खोल सकते हुए, उनके पूर्वजन्म कृत कुकर्मों को आधार कारण अथवा हेतु कहने लगे। वे इतना सोचना भी नहीं चाहते कि फिर वैसा दूध पिलाने वाला मुलजिम नहीं ठहरेगा। ऐसा विचार रखने वाले सोचें कि दूध में घोलकर दिया गया पदार्थ जिसके गले से उतर कर कलेजे में जावेगा वहाँ अपना रंग या प्रभाव जमाएगा ही और वह दूध पिलाने वाला पापी अवश्यमेव भविष्यत् में ईश्वरीय न्याय से दण्ड पावेगा। साधारण जनापेक्षा इस तीव्र कष्ट सहन से भी जो सहन-शीलता रही, उसमें महर्षि का पाप नहीं किन्तु उनका एतज्जन्म पुण्योत्पन्न आत्म-बल अत्यन्त सहायक रहा और धर्म करते हुए जन को कष्ट दिया जाना तो साँसारिकता है क्योंकि यहाँ खुदगर्जी और अज्ञान का जोर जो ठहरा।

यद्यपि भूमिकाएँ अथवा प्राक्कथन पुस्तक के प्रारम्भ में मुद्रित लगाये जाने से इन शब्दों से व्यवहृत किये जाते हैं और वे इस दृष्टि से ठीक भी कहे जा सकते हैं कि बुनियाद-नीव पर भवन निर्माण किया जाने के समान ग्रन्थ लेखक ने क्या सोचकर उस 'सोच' को प्रबल प्रकाश में लाने के लिए ग्रन्थ लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु प्रायः कुलमुद्रित सामग्री को देखकर ही ये ठीक लिखे जा सकते हैं। इस प्रकार होते तो 'पश्चात्कथन' है परन्तु कह दिये जाते हैं 'प्राक्-कथन'। वस्तुतः पूर्णमुद्रण देखकर ही लेखक के परिश्रम का मूल्याङ्कन सम्भव है अन्यथा तो भूमिका लेखन पल्लवग्राहिपाण्डित्य प्रदर्शन ही रहता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ को देखकर मुझे अतीव सन्तोष है कि इस विषय में शिष्यत्व स्वीकार करने वाले मेरे स्नेहपात्र प्रिय श्री यशपाल आर्य बन्धु ने इस कर्म फल 'प्रश्नोत्तरी' में १०० प्रश्न उठाकर उनके जो उत्तर दिये वे अत्यन्त ठोस हैं और लेखक की स्वाध्याय शीलता की छाप निष्पक्ष पाठक हृदय पर लगाने में पूर्ण समर्थ है। पाठक इस रचना में हम दोनों का सहयोग माने या न माने परन्तु यह निश्चित है कि यहाँ निबद्धमान्यताओं का दायित्व हम दोनों पर इसलिए है कि ये उभय सम्मत हैं।

ये १०० प्रश्नोत्तर पाठकों के समक्ष आकर उसे कुछ सोचने समझने को विवश कर देते हुए उनके ज्ञान-संवर्धन में अवश्यमेव सहायक होंगे, इन आशा ही नहीं किन्तु विश्वास पूर्ण शब्दों के साथ इस निवेदन को समाप्ति की ओर ले जाता हुआ यह भी प्रकट कर देना परमावश्यक समझता हूं कि मुझे अथवा श्री यश पाल जी को अपने कहने या लिखने पर ऐसा दुराग्रह नहीं है कि हम किसी अमान्यता को भी मान्यता का ही पद देते रहें - अतः जो भी सज्जन सद्भावनापूर्ण सुधार प्रस्तुत करेंगे, उस पर गम्भीर चिन्तन के पश्चात् यदि मान्यता परिवर्तन आवश्यक निर्णीत हुआ तो वैसा अवश्य ही स्वीकार्य रहेगा।

निवेदियता बलदेवाग्निहोत्री साहित्याचार्य प्रभाकर
वैदिक धर्म विशारद, मुरादाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी
में शिक्षा पा रही, श्री गोविन्द राम जी आर्य
पुरोहित की सुपुत्री सुश्री प्रियंवदा
संस्कृत में भाषण देती हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेद पारायण महायज्ञ की झलकियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेद परायण महायज्ञ की झलकियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेदी परायण महा यज्ञ की झलकियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

कर्म फल प्रश्नोत्तरी

प्र०-१ कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—क्रियत इति कर्म जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्योद्देश्य रत्नमाला में कर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है

"जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा विशेष करता है, वह कर्म कहाता है"।

प्र०-२ कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर साधारणतया कर्म खोटे और खरे अथवा अच्छे और बुरे के नाम से जाने जाते हैं परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्योद्देश्य रत्न माला में शुभ अशुभ एवं मिश्रभेद से तीन प्रकार के कर्म मानते हैं। योग दर्शन कैवल्य पाद में योगियों के कर्म पाप पुण्य से रहित एवं शेष अयोगी जनों के कर्म तीन प्रकार के लिखे हैं :—

(१) शुक्ल अर्थात् शुभ (२) कृष्ण अर्थात् अशुभ (३) शुक्लकृष्ण अर्थात् मिश्रित। कुछ विद्वान् निम्नलिखित चार प्रकार के कर्म मानते हैं -

(१) विहित—यज्ञ दान आदि शुभ कर्म
(२) अविहित -साधारण कर्म जैसे बोलना, चलना
(३) प्रतिषिद्ध -चोरी हिंसा आदि दुष्ट-कर्म
(४) अप्रतिषिद्ध—आँखों का झपकाना इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-३ क्रियामाण, संचित तथा प्रारब्ध कर्मों से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर क्रियमाण :--जो किये जा रहे हैं। वर्तमान समय में हम जो स्वतन्त्रता पूर्वक नवीन कर्म करते हैं, उन्हें क्रियमाण कर्म कहते हैं।

संचित – क्रियमाण कर्मों के संस्कारों को संचित कहते हैं इन का फल मिलना अभी प्रारम्भ नहीं होता।

प्रारब्ध – किये जा चुके कर्मों के सुख दुख रूप फल भोग को प्रारब्ध कहते हैं।

प्र०-४ क्या कर्म करना अनिवार्य हैं ?

उत्तर--कर्त्तृत्व मनुष्य का स्वाभाविक गुण है कोई भी मनुष्य बिना कर्म के क्षण भर भी नहीं रह सकता। "नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्" महर्षि दयानन्द ऋ० १।६८।३ के भाष्य में लिखते हैं "कोई मनुष्य कर्म के बिना क्षण भर भी स्थित नहीं हो सकता"

वेद में मनुष्य को क्रतो' शब्द से सम्बोधित कर उसकी कर्मशीलता को सम्बोधित किया गया है।

प्र०-५ मनुष्य शुभाशुभ कर्म क्यों करता है ?

उत्तर– जैसा कि प्रश्न ४ के उत्तर में लिखा जा चुका है कर्त्तव्य मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। सत्व, रजस्, तमस् रूपी निज त्रिगुणात्मक प्रकृति से प्रभावित होकर मनुष्य को कुछ न कुछ करना अनिवार्य है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के नवम्-समुल्लास में सत्व, रजस् तमस् आदि गुणों से होने वाले कर्मों का विशद वर्णन इन शब्दों में करते हैं 'जो गुण इन जीवों की देह में अधिकता से वर्तता है वह गुण उस जीव को अपने सदृश कर लेता है जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तम और जब राग द्वेष में आत्मा लगे तब रजो गुण जानना चाहिए।" इसी त्रिगुणात्मक प्रकृति से प्रभावित होकर मनुष्य कर्म करता है।

प्र०-६ क्या मनुष्य शैतान के बहकाने पर पाप कर्म करता है ?

उत्तर—ईसाई और मुसलमान भाई ऐसा मानते हैं कि शैतान ही मनुष्य को बहकाकर पाप कराता है। परन्तु यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यह पाप कर्म के उत्तरदायित्व से बचने का केवल एक बहाना है। यदि शैतान पाप कराये तो पाप का फल भी उसे ही मिलना चाहिए। वस्तुतः हमारा बिगड़ा हुआ मन ही शैतान है और कोई नहीं और उसके वश में हुआ मनुष्य पाप कर बैठता है। कबीर दास जी कहते हैं।

बहुतक पीर कहावते, बहुत करत हैं भेस।
ये मन कहर खुदाय का मारे सो दरवेस॥

जब हम जोश के साथ पाप करते हैं तो फल भोग के उत्तरदायित्व का साहस भी हमारे अन्दर होना अनिवार्य है। वरना

हँसी आती हे हमें हजरते इन्सान पर।
कारे बद तो खुद करे लानत धरे शैतान पर॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्याथ प्रकाश त्रयोदश समुल्लास में क्या ही उत्तम लिखते हैं—"जब कोई ईसाईयों से पूछेगा कि शैतान सब को बहकाता है, तो शैतान को कौन बहकाता है, जो कहो शैतान आप से आप बहकता है तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं पुनः शैतान का क्या काम ?"

प्र०-७ क्या मनुष्य ईश्वर के इशारे पर कर्म करता है ?

उत्तर—नहीं। यदि ईश्वर की प्रेरणा अथवा इशारे से यन्त्रवत् कार्य करे तो स्वतन्त्र कर्ता नहीं हो सकता ऐसी दशा में उसे पाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का फल भी नहीं मिल सकता जैसा कि स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास में लिखते हैं 'जो (जीव) स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप पुण्य का फल प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारकर अपराधी नहीं होते वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और अधीनता से काम सिद्ध हो तो जीव को पाप व पुण्य न लगे उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे।"

ईश्वर कभी भी किसी व्यक्ति को पाप कर्मों में प्रवृत होने की प्रेरणा नहीं करता अपितु भय, शंका, लज्जा उत्पन्न कर साव-धान करता है अतः यह धारणा "यन्त्रोऽह्म भवान् यन्त्री मम दोषो न विद्यते" अर्थात् मैं यन्त्र हूँ और आप यन्त्री हैं फिर जो कुछ भी मेरे हाथों से हो रहा है उसके करने में मेरा क्या दोष है, एक निराधार एवम् अनुचित कल्पना है।

प्र०-८ क्या सब कुछ ईश्वर की इच्छा या मरजी से होता है ?

उत्तर—यद्यपि, मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है।
वही होता हैं जो मज़ूरे खुदा होता है ।। तथा
तेरी इच्छा के बिना हे प्रभु मंगल मूल ।
पत्ता तक हिलता नहीं खिले न कोई फूल ।।

जैसी धारणायें समाज में प्रचलित एवं बद्ध मूल हो चुकी हैं तथापि यह सब वास्तविकता से कोसों दूर हैं। ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिलता इस धारणा पर चोट करते हुये श्री पंडित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय कर्म फल सिद्धान्त नामक पुस्तक में लिखते हैं—"पत्ता हिले न हिले परन्तु झूठे की जीभ तो बिना ईश्वर की इच्छा के हिल जाती है। यदि ईश्वर की इच्छा से ही झूठा झूठ बोलता है तो उसको झूठ बोलने का पाप क्यों लगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग तो इस प्रसंग में परमात्मा को ही कर्त्ता घोषित कर अपने को दण्ड्य कोटि से बचाने का दुष्प्रयत्न तक कर बैठते हैं जैसे 'मीर' साहब का फरमाना हैं --

"नाहक हम दीवानों पर तुहमत है खुद मुखतारी की
जो कुछ करें सो आप करें हमें अबस बदनाम किया"।

डा० वेद प्रकाश गुप्त अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "दयानन्द दर्शन" में Shri P. N. Nivasachari का निम्न उदाहरण देकर 'Regard all your actions as determined by Bhagwan or God as the ultimate subject or Karta"

इसके खण्डन में कितना तर्क पूर्ण विवेचन उपस्थित करते हैं कि "कुछ (तथाकथित) धर्मज्ञ पंडितों का कहना है कि संसार का सारा व्यापार परमात्मा की इच्छा से होता है। उसकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। नियतिवाद की धारणा ने जनसाधारण के साथ साथ अनेक विद्वानों पर भी अपनी छाप जमाई हुई है। श्री निवासाचारी जैसे विद्वान् गीता में भी नियतिवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं कि परमात्मा को कर्त्ता समझो तथा सारे कर्म उसी के द्वारा पूर्व नियोजित हैं।"

परन्तु इस प्रसंग में यह विचारना अनिवार्य है कि 'एक बार कर्मों को परमात्मा द्वारा निश्चित किया जाना मान लेने पर कर्म करने में जीव को स्वतन्त्र कहना केवल शब्द-जंजालमात्र है।"

सब कुछ खुदा की मरजी से होता है यह सिद्धान्त मुख्य रूप से ईसाईयों तथा मुसलमानों का है वैदिक सिद्धान्त नहीं। चाँदापुर के मेले में मौलवी मुहम्मद कासिम साहब के उत्तर में श्री स्वामी जी कहते हैं यह कहना कि ईश्वर जो चाहे सो करे इससे यह भी निकलता है कि ईश्वर ही बुराई भी कराता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है यह कहना ईश्वर में नहीं बनता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कोई सज्जन यह भी कह दिया करते हैं कि वैसे तो सब कुछ खुदा की मरजी से ही होता है पर कुकर्म हम शैतान के बहकाने पर ही करते हैं। इस पर हमारा यह प्रश्न है कि शैतान का बहकाना भी खुदा की मरजी से होता है या नहीं ?

सब कुछ खुदा की मरजी से होता है ऐसा मानने वाले ईसाई तथा मुसलमानों से हमारे गुरु जी पूज्य आचार्य बलदेव जी अग्निहोत्री प्रश्न किया करते हैं कि जब सब कुछ खुदा की मरजी से होता है तो क्या "महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में ईसा-इयत एवं इस्लाम का खण्डन खुदा की मरजी से नहीं किया ? यदि कहो कि खुदा की मरजी से ही किया है तो फिर उसकी मरजी जानकर वैदिक धर्म स्वीकार कर लो यदि कहो कि खुदा की मरजी से नहीं किया तो तुम्हारे खुदा की मरजी के बिना भी तुम्हारे मतों का खन्डन कैसे हो गया ?

अतः सिद्ध है कि मन्जूरे खुदा का सिद्धान्त वेद का सिद्धान्त नहीं। इस सम्बन्ध में वेद के प्रमाण कोई चाहे तो प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

प्र०-९ क्या जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं ?

उत्तर—हाँ ! जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र न हो तो फल का भागी भी नहीं हो सकता। वेदादि सत्य शास्त्रों में यज्ञ दान, परोपकार आदि शुभकर्म करने का आदेश एवं असत्य भाषण, चोरी, जुआ आदि कुकर्मों का निषेध होते हुये भी असंख्य जीव नित्य प्रभु आज्ञा के विपरीत पापाचरण में रत रहते हैं। इससे सिद्ध होता है जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है।

प्र०-१० स्वतन्त्र कर्त्ता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जो स्वतन्त्रता से सब कर्मों का करने वाला हो जिसके आधीन सब साधन होते हैं उसे स्वतन्त्र कर्त्ता कहते हैं। यह ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुये हैं परन्तु ये सब जीव के आधीन हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरण हों उसी को स्वतन्त्र कर्त्ता कहते हैं।

प्र०-११-ईश्वर ने अल्पज्ञ जीव को स्वतन्त्रता क्यों प्रदान की ? ईश्वर ने अल्पज्ञ जीव को एक ओर तो कर्म स्वतन्त्रता प्रदान कर दी एवं दूसरी ओर जब जीव स्वतन्त्रता पूर्वक काम करता है तो वह उसे दण्ड फल देता है ये कैसा न्याय है यदि ईश्वर ने दण्ड ही देना है तो कर्म स्वतन्त्रता क्यों देता है ?

उत्तर— जीव यद्यपि कर्म करने में स्वतन्त्र है तथापि यह कर्म स्वतन्त्रता उसे ईश्वर प्रदत्त नहीं अपितु स्वतः स्वभाव से ही है। अमृतत्व चेतनता आदि की भांति कर्त्तृत्व (प्रयत्न) भी जीव का स्वाभाविक गुण है ईश्वर प्रदत्त नहीं। अतः ये आक्षेप कि ईश्वर ने जीव को कर्म स्वतन्त्रता प्रदान कर अन्याय किया है निराधार ठहरता है।

वेद में मनुष्यों के लिए यह निर्देष कहीं नहीं कि वे जो चाहें सो करें, न करें अथवा उल्टा करें, अपितु विहित कर्मों के ही करने का एवं निषिध कर्मों के न करने का ही आदेश है, अन्यथा करने का नहीं। मनमानी न करने का आदेश होते हुये भी जीव मनमानी करता है और तभी तो उसे मनमानी न कर डालने का आदेश दिया गया है अन्यथा यदि वह मनमानी कर ही न सकता होता तो निषेध का क्या प्रयोजन होता ? जब ईश्वर ने जीव को कर्म स्वतन्त्रता प्रदान नही की एवं अपने वेद ज्ञान द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्याकर्तव्य का बोध भी करा दिया तब फल देने में क्या दोष ?

प्र०-१२ क्या कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ?

उत्तर—निश्चय ही ! कर्म का फल भोग के बिना छुटकारा नहीं। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।" "अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चय: (देवी भागवत) महर्षि दयानन्द उपदेश मंजरी पूना प्रवचन में लिखते हैं "पाप पुण्य का हिस्सा बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता अर्थात पापों को भोगना ही पड़ेगा ।"

प्र०-१३ मनुष्य को अपने कर्मों का फल क्यों भोगना पड़ता है ? जीवों के कर्मों से ईश्वर का अपना क्या बनता बिगड़ता है जो वह जीवों को उनके कर्मों का फल देता है ।

उत्तर--जीवों को अपने कृत कर्मों का फल इसलिए नहीं भोगना पड़ता कि इससे ईश्वर का अपना कुछ बनता बिगड़ता है अपितु इसलिए कि जैसे कर्तृत्व जीव का स्वभाव है वैसे ही न्याय अर्थात् जीवों के कर्मों का ठीक ठीक फल देना भी ईश्वर का स्वभाव है। दूसरे जब वेदादि शास्त्रों में जीवों को उत्तम कर्मों एवम् उनके फल रुप सुख एवं दुष्कर्मों और उनके फल रूप दुःख का ज्ञान करा दिया गया तो कर्म करने पर फल भुगवाना व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है। यदि कर्म का फल न मिले तो कोई व्यवस्था ही न रहे एवम् सब जीव उच्छृंखल हो जायें। अतः न्याय एवं व्यवस्था की दृष्टि से जीवों को उनके कर्मों का फल भुगवाना आवश्यक है।

कर्म का फल इसलिए भी देना आवश्यक है कि जिससे मनुष्यों को शुभ कर्म करने की तथा दुष्कर्मों से बचने की प्रेरणा मिलती रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-१४ कर्मफल व्यवस्था के अन्तर्गत किन कर्मों का फल मिलता है ?

उत्तर--वे सभी स्वतन्त्रता पूर्वक किये गये शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म, भले ही वे इच्छा पूर्वक अथवा अनिच्छा पूर्वक जाने अनजाने में किये गये हों जिनसे स्वयं कर्त्ता अथवा अन्य किसी भी प्राणी का हित अहित (सुख दुःख) होता है, फलदायक कर्म होने से कर्म फल व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं अर्थात ऐसे कर्मों का फल अवश्य मिलता है।

प्र०-१५ क्या अनिच्छा पूर्वक किये कर्मों का फल मिलता है ?

उत्तर--हमारे शरीर में कुछ अनिच्छा पूर्वक क्रियाएँ भी होती रहती हैं जैसे पलकों का झपकना, जंभाई, छींक आदि। इन क्रियाओं का कर्मफल व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु कुछ क्रियाएँ ऐसी भी होती हैं जिन्हे हम इच्छा या इरादे से तो नहीं करते किन्तु वे मन से ही हो जाती है। ऐसी अनिच्छा से की गई क्रियाएँ यदि किसी प्राणी के सुख दुःख का कारण बन जायें तो ऐसी क्रियाओं का फल भी मिला करता है। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति सड़क पर टहलता हुआ अपनी छड़ी यों ही घुमा रहा है और वह छड़ी एक अन्य राही की आँखों में जा लगे और उसकी आँख फूट जाय तो इस छड़ी घुमाने वाले को दण्ड अवश्य मिलेगा। यद्यपि यहाँ इच्छा पूर्वक आँख फोड़ने की क्रिया नहीं की गई तथापि आँख तो फूटी ही। यह और बात हैं कि इच्छा पूर्वक आंख फोड़ने की अपेक्षा दण्ड की मात्रा कुछ कम हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-१६ जो कर्म केवल कर्त्ता तक ही सीमित हैं एवं जिनसे किसी दूसरे को कुछ भी सुख दुःख नहीं पहुँचता क्या ऐसे कर्मों का फल भी मिलता है ?

उत्तर— अवश्य मिलता है। कोई व्यक्ति व्यभिचार आदि से अपने स्वास्थ्य तथा आयु का ह्रास कर लेता है तो वह दण्ड मुक्त कैसे हो सकता है। इसी प्रकार आत्महत्या आदि कर्मों का फल भी अवश्य मिलता ही है।

प्र०-१७ कर्म फल दाता कौन है ?

उत्तर—"सत्यराजन जो सत्यकर्त्ता, पक्षपात रहित परमात्मा धर्मराज है वही सबका न्याय कर्त्ता है।"

(स० प्र० एकादश समुल्लास)

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास में लिखते हैं "फल देने वाला ईश्वर है, जैसे कोई चोर, डाकू स्वयं बन्दीगृह में जाना नहीं चाहता। राजा उसको अवश्य भेजता है वैसे ही परमात्मासबको पाप पुण्य से दुःख और सुखरुप फलों को यथावत् भुगाता है।"

प्र०-१८ क्या जीव फल भोगने में स्वतन्त्र है ?

उत्तर- नहीं जीव केवल कर्म करने में स्वतन्त्र है फल भोगने में नहीं ! कोई स्वेच्छा से फल नहीं भोगता। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास में लिखते हैं कि यदि ईश्वर फल प्रदाता न हो तो पाप के फल दुःख को जीव अपनी इच्छा से कभी नहीं भोगेगा जैसे चोर आदि चोरी का फल दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगते किन्तु राज्य व्यवस्था से भोगते हैं वैसे ही परमेश्वर के भुगाने से जीव पाप और पुण्य के फलों को भोगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे बिना राजा के डाकू, लम्पट, चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी व कारागृह में नहीं जाते, न वे जाना चहते हैं किन्तु राजा की न्याय व्यवस्थानुसार बलात्कार से पकड़ा कर यथोचित राजा दण्ड देता है, इसी प्रकार जीव को भी ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से स्व-स्व कर्मानुसार यथायोग्य दण्ड देता है, क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल भोगना नहीं चाहता, इस लिये अवश्य परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिए।"

जीव के फल भोगने में परतन्त्रता का एक प्रमाण यह भी है कि कोई भी जीव दुःख की कामना नहीं करता पर उसे सदा चाहे हुये सुख नहीं मिलते और कभी न चाहे हुये दुःख भी मिल जाते हैं अतः सिद्ध है कि जीव कर्म फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं आचार्य शंकर "सर्व-दर्शन-सिद्धान्त संग्रह में लिखते हैं—

"जीवाः कर्मफलावाप्तौ शक्ताश्चेत्स्वः सुखेरताः ।
अप्रार्थितानि वारयन्तु प्रयत्नतः ।।

अर्थात् अपने सुख में रमे हुये जीव ही यदि कर्म के फल में समर्थ होते तो वह परिश्रम करके न चाहे हुये दुःखों से दूर रह सकते। परन्तु ऐसा नहीं होता। कभी चाहे हुये सुख नहीं मिलते और कभी न चाहे हुए दुःख भी मिल जाते हैं।"

प्र०-१६ क्या कर्म स्वयं फल देते हैं ?

उत्तर– नहीं ! कर्म जड़ होने से स्वयं फल नहीं दे सकते। महर्षि सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास में प्रश्नोत्तर रूप में इस विषय को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं "प्रश्न-दान आदि कर्मों के फल स्वयं होते हैं या कोई फल देने वाला है ? उ० फल देने वाला ईश्वर है।" सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास में 'कर्म स्वयं फल देते हैं इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारणा का महर्षि ने बड़ा युक्ति युक्त खण्डन किया है। महर्षि लिखते हैं "प्रश्न-मद (नशा) के समान कर्म स्वयं प्राप्त होता है, फल देने में दूसरे की आवश्यकता नहीं। उ० जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करने वालों को मद कम चढ़ता, अनभ्यासी को बहुत चढ़ता है, वैसे नित्य बहुत पाप पुण्य करने वालों को न्यून और कभी कभी थोड़ा थोड़ा पाप पुण्य करने वालों को अधिक फल होना चाहिए और छोटे कर्म वालों को अधिक फल होवे।"

कर्मों का स्वयं फल न देने में एक हेतु यह भी है कि कर्म का फल जीव के सुधार के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही दिया जाता है। एक ही प्रकार के कर्म का फल भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक सा ही नहीं मिलता। फल की मात्रा का निर्णय कोई चेतन सत्ता ही कर सकती है, जड़ वस्तु नहीं। कर्म स्वयं फल दें तो ज्ञानी, अज्ञानी, अभ्यासी, अनभ्यासी सबको बराबर एक सा फल मिले जब कि विधान यह है कि ज्ञानी पुरुष को पाप का फल अज्ञानी से अधिक तथा अभ्यासी को अनभ्यासी से अधिक दण्ड मिलता है। यह फल भेद जड़ कर्म स्वयं नहीं कर सकते। अतः कर्म फल दाता ईश्वर का मानना परम आवश्यक है।

प्र०-२० कर्म फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र होने का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—महर्षि दयानन्द स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं--

"जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं। महर्षि के इस वाक्य को न समझकर कुछ लोग यह कह दिया करते हैं कि जीव कर्म फल भोगने में ईश्वर के अधीन न होकर उसकी व्यवस्था के अधीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और इसी आधार पर वे लोग ऋषि की मौलिकता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु वे भूल जाते हैं कि कर्म फल व्यवस्था का व्यवस्थापक होने से जब व्यवस्था ही ईश्वर के अधीन हुई तब जीव उस व्यवस्थापक की व्यवस्था से कर्म फल भोगने में व्यवस्थापक ईश्वर के अधीन कैसे नहीं। व्यवस्थापक की अधीनता न मानकर केवल व्यवस्था की अधीनता स्वीकार करना दोष पूर्ण है इसमें कोई मौलिकता नहीं। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कर्म फ़ल सिद्धान्त पृष्ठ २१ पर लिखते हैं "यदि हम ईश्वर को व्यवस्थापक न मानकर केवल व्यवस्था तक अपने को सीमित रखेंगे तो ऐसी व्यवस्था एक ज्ञान शून्य जड़ यन्त्र के समान हो जायेगा। इससे व्यवस्था शब्द ही निरर्थक हो जायेगा।" महर्षि दयानन्द को यह कदापि अभिप्रेत नहीं कि जीव कर्म फल भोग में ईश्वर के अधीन न होकर उसकी व्यवस्था के अधीन है।

फिर व्यवस्था से परतन्त्र का अभिप्राय:-

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व प्राय: यही समझा जाता था कि ईश्वर जिसको जैसा चाहे फल दे देता है। परन्तु महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में उद्घोष करते हैं कि "जो जीव जैसा कार्य करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करने वाले जीव ईश्वर की न्याय रूपी व्यवस्था से दु:ख रूप फल पाते हैं। तब रोते हैं।" महर्षि यहाँ स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर का न्याय ही उसकी व्यवस्था है और "न्यायं कर्तुं शील-मस्यस न्यायकारी ईश्वर: जिसका न्याय अर्थात् पक्षपात रहित धर्म करने ही का स्वभाव है, उस ईश्वर का नाम न्यायकारी है" अत: कर्म फल भोगने में जीव ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र अर्थात् ईश्वर के व्यवस्थित न्याय से परतन्त्र है अन्यथा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय की व्याख्या करते हुए त्रयोदश समुल्लास में महर्षि लिखते हैं "न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जितना कर्म किया उसको वैसा उतना फल देना उससे अधिक न्यून देना अन्याय है।" अतः सिद्ध है जीवात्मा का ईश्वरीय व्यवस्था से परतन्त्र होने का तात्पर्य ईश्वर के न्याय से परतन्त्र होना ही है।

प्र०-२१ क्या कर्म फल व्यवस्था स्वचालित है ?

उत्तर नहीं! कर्म फल व्यवस्था को स्वचालित मानना भूल है। प्रथम तो जीव को कर्म फल भोगने में ईश्वर के अधीन न मानकर व्यवस्था के अधीन मानना और फिर उस व्यवस्था को स्वचालित मानना ईश्वर के विमुख हो नास्तिकता को बढ़ावा देना नहीं तो और क्या है कारण कि कर्म फल व्यवस्था को स्वचालित मान लेने से कर्म फल दाता ईश्वर की आवश्यकता ही क्या रह जाती है? कर्म फल व्यवस्था स्वचालित मानने का अर्थ तो यह हुआ कि कर्म स्वयं फल देते हैं जब कि कर्म जड़ होने से फल नहीं दे सकते। अतः यह व्यवस्था स्वचालित न होकर ईश्वरचालित है।

प्र०-२२ कर्म फल व्यवस्था क्या है ?

उत्तर– जीवों के कर्मों का ठीक ठीक न्यायोचित फल देना ही कर्म फल व्यवस्था है अर्थात् कर्म फल व्यवस्था ईश्वरीय न्याय का ही दूसरा नाम है। कर्म फल व्यवस्था के मूल भूत सिद्धाँत निम्नलिखित हैं –

१– जीव कर्म करने में स्वतन्त्र एवं फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है।

२– कर्म के लिए कर्त्ता उत्तरदायी होता है एवं प्रत्येक कर्म का फल कर्त्ता को ही भोगना पड़ता है अन्य किसी को नहीं।

३– कर्म का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ ईश्वर कर्मानुसार ही फल देता है अन्यथा नहीं।
५ कुछ कर्मों का फल वर्तमान जन्म में एवं कुछ बच रहे कर्मों का फल भावी जन्म में मिलता है।

प्र०-२३ कर्म फल व्यवस्था होने में क्या प्रमाण है ?

उत्तर—प्राणियों में पायी जाने वाली विषमता कर्म फल व्यवस्था का सबसे बड़ा प्रमाण है। जीवों की स्थिति में यह विषमता अकारण नहीं अपितु कर्मों के भेद से है। एक माता की कोख से उत्पन्न बच्चों में समता नहीं पायी जाती। यदि कर्म फल व्यवस्था न होती तो प्रत्येक आत्मा सुन्दरतम शरीर में ही प्रवेश करता अथवा सुन्दर शरीर ही धारण करता पर उसकी विवशता तो देखिए कि काला कलूटा, काना, कुबड़ा लँगड़ा, लूला शरीर भी धारण करना पड़ता हैं। क्या यह कर्म फल व्यवस्था होने का प्रमाण नहीं।

कर्म फल व्यवस्था न होती तो प्रत्येक व्यक्ति मनोवांच्छित फल प्राप्त करने में समर्थ होता कोई भी निःसन्तानादि न होता, कोई दरिद्र तथा मूर्ख न होता, कोई दुःख न पाता। परन्तु संसार में दुःख की कामना न करते हुये भी लोग दुःखी हैं। और सुख की कामना करते हुये भी सुख प्राप्त नहीं कर पाते। कभी अन चाहे दुःख मिल जाते हैं और कभी चाहे हुये सुख नहीं मिलते। यह सब कर्मों के कारण नही तो और क्या है ?

कर्म फल व्यवस्था द्वारा ही हम जन्म मृत्यु तथा सुख दुःख आदि समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो सकते हैं। संसार के वैषम्य का वैदिक धर्म में इस प्रकार का समुचित समाधान देखकर पाश्चात्य दार्शनिक मिल को कहना पड़ा था कि 'संसार के वैषम्य की व्याख्या करने से यह हिन्दू लोग बड़े चतुर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने कर्मों का सिद्धान्त खोज निकाला है। ईसाई तो इस समस्या का समाधान कभी नहीं कर सकते जब कि हिन्दुओं का कर्म सिद्धान्त इस विषमता की व्याख्या अवश्य कर सकता है।"

प्र०-२४ कर्म फल व्यवस्था के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—कर्मफल व्यवस्था को ठीक ठीक समझने तथा श्रद्धा से मानने से अनेक लाभ हैं।

कर्म फल व्यवस्था मानने से मनुष्य दुष्कर्मों से बचकर शुभ कर्मों में प्रवृत होता है क्योंकि वह जानता है कि जैसा कर्म मैं करूँगा वैसा ही फल प्रभु की व्यवस्था से पाऊँगा। दुष्कर्मों से बचकर मनुष्य अपने सुख के साधन जुटा लेता है और दुःखों से छूट जाता है क्योंकि "छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति" अर्थात् जैसे मूल के कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप के छोड़ने से दुःख नष्ट होता है।

२—कर्म फल व्यवस्था के मानने से कर्म फल दाता ईश्वर के प्रति श्रद्धा के भाव उत्पन्न होते हैं एवम् आस्तिकता का उदय होता हैं।

३—प्राणियों में पायी जाने वाली विषमता का तर्क संगत अथवा युक्ति युक्त समाधान प्रस्तुत करने में मनुष्य सक्षम हो सकता है।

प्र०-२५ कर्म फल व्यवस्था न मानने से क्या हानि है ?

उत्तर १—कर्म फल व्यवस्था न मानने से सबसे बड़ी हानि है नास्तिकता का उदय होना।

२—कर्म फल व्यवस्था न मानने से मनुष्य दुष्कर्म करने में भय नहीं खाता और अन्त में दुःख भोगता है।

३—कर्म फल व्यवस्था न मानने वाले लोग प्राणियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायी जाने वाली विषमता का कोई समुचित समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाते।

प्र०-२६ क्या कर्म फल व्यवस्था जीवों के कल्याण के लिए है इससे जीवों का कल्याण कैसे हो सकता है?

उत्तर—निश्चय ही कर्म फल व्यवस्था जीवों के कल्याण के लिए है। ईश्वर जो कर्म फल दाता है अपने स्वाभाविक दयालुता के कारण प्राणीमात्र के कल्याण के लिए कर्म फल की व्यवस्था किये हुये है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ईश्वर प्रत्येक जीव को कृत कर्मों का फल भुगवाकर उन्नति हेतु कार्य क्षेत्र प्रदान कर नवीन अवसर प्रदान करता है। दूसरे ईश्वर कर्म का फल भी किसी प्रतिकार की भावना से न देकर जीवों के सुधार के उद्देश्य से देता है क्योंकि वह प्रभु प्रत्येक जीव का सच्चा हितैषी एवं हित साधक है।

कर्म की वासना मनुष्य को बार बार वैसा कर्म करने के लिए प्रेरित किया करती हैं और इस प्रकार बार बार वैसा कर्म करने से जीव को उस कर्म का अभ्यास सा पड़ जाता है। परन्तु कर्म फल व्यवस्था आवागमन द्वारा जीवों को विभिन्न योनियों में कर्म फल भुगवा कर उस अभ्यास को छुड़ाता है। इस व्यवस्था में जीव अपने कर्मानुसार ऐसी योनियों में जन्म लेते हैं जिनमें वैसे कर्मो के साधन न होने से उन कर्मों का वासनागत अभ्यास छूट जाता है और इस प्रकार दुष्कर्मों का फल भोगकर एवं वासनागत कुकर्मों का अभ्यास छूट जाने पर जीव पुनः कर्म योनि में जन्म ले उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता है इस प्रकार हम देखते हैं कि कल्याणकारी प्रभु ने कर्म फल व्यवस्था और इस विशाल सृष्टि को रचकर जीवों पर बड़ा उपकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-२७ कर्म का कर्त्ता और भोक्ता कौन है ?

उत्तर कर्म का कर्त्ता और फल भोक्ता शरीर धारी जीव ही है। बिना शरीर के न तो जीव कर्म कर सकता है और न ही फल भोग सकता है।

कठोपनिषद में (गीता में भी) कहा गया है:—

"आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण"

अर्थात् मन और इन्द्रियों से युक्त आत्मा ही कर्त्ता और भोक्ता है महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश नवम-समुल्लास में लिखते हैं जैसे दरबार से मारने वाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तकरण और प्राण रूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख दुःख का भोगता है।"

प्र०-२८ क्या प्रत्येक इन्द्रिय अपने कर्मों का फल स्वयं भोगती है ?

उत्तर कर्म के विषय में विचार करते हुये कभी कभी लोग कह दिया करते हैं कि प्रत्येक इन्द्रिय अपने कर्म के लिए स्वयम् उत्तरदायी होती हैं एवं वही कर्मों का फल भोगती है परन्तु ये धारणा यथार्थ नहीं। शरीर इन्दियां अन्तःकरण आदि जीव के आधीन है। फिर शरीर इन्द्रयाँ आदि जड़ हैं अतः जड़ पदार्थों में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का उत्तरदायित्व नहीं हो सकता। चेतन जीव ही इन्द्रियों के द्वारा पाप पुण्य करता है। जीव मन, वाणी तथा शरीर से जो जों शुभाशुभ कर्म करता है उसका फल भी मन, वाणी, तथा शरीर से वही भोगता है। न कि मन, वाणी अथवा शरीर कर्मफल भोगते हैं। महर्षि इन्द्रियों को कर्त्ता भोक्ता नहीं अपितु उनके सम्बन्ध से जीव को ही कर्त्ता भोक्ता मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-२९ कर्म का फल कब मिलता है ?

उत्तर—कौन सा कर्म कब फल देगा इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना कहा जा सकता है कि विपाक अर्थात् पक जाने पर ही कर्म फलदेता है। कर्मों की गुरूता लघुता आदि भेदों के आधार पर कुछ कर्मों का विपाक शीघ्र और कुछ का विलम्ब से होता है।

कर्म दृष्ट, अदृष्ट और दृष्टादृष्ट फल वाले होने से कुछ का फल इस जन्म में, कुछ का भावी जन्मों में तथा कुछ कर्मों का फल भावी एवं वर्तमान, दोनों जन्मों में मिलता है

प्र०-३० क्या कर्म का फल तत्काल नही मिलता ?

उत्तर—प्राय: कर्मों का न्यायतः फल तत्काल नहीं मिलता। उसमें कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। बीज बोने पर तत्काल फल मिलना किस प्रकार हो सकता है उसे पकने के लिए समय चाहिए।

मनुस्मृति (अ० ४-७२) का निम्न श्लोक इसमें प्रमाण है:-

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥

संस्कार विधि गृहस्थाश्रम प्रकरण में महर्षि ने इस का निम्न अर्थ किया हैं:—

"मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किये हुये अधर्म का फल शीघ्र नहीं होता किन्तु धीरे धीरे अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग ये सिद्ध करने के लिए कि कर्मों का फल तत्काल मिलता है ये कहा करते हैं कि Even handed gustice का तकाजा यह है कि इस हाथ ले उस हाथ दे। वे लोग उदाहरण देते हैं कि अग्नि कों छुआ कि हाथ जला, शराब पी कि नशा हुआ, विष खाया कि मृत्यु हुई पर ऐसा कहने वाले यह नहीं समझते कि वे कर्म फल-सिद्धान्त के कितना विपरीत जा रहे हैं। यदि नशा मद्यपान रूपी कर्म का न्यायोक्त फल है तो उस कर्म का प्रभाव (Effect) क्या है यदि नशे का नाम ही फल है तो हर शराबी ने तभी फल भोग लिया फिर प्रभु की ओर से उसे कुछ दण्ड फल मिलना शेष नहीं रह जाता। विष पान का फल यदि मृत्यु है तो आत्म हन्ता ने फल भोग लिया अब उसे और फल नहीं मिलना चाहिए। अग्नि में हाथ डालने का फल यदि जल जाना मात्र है तो अग्नि में कूद कर जल मरने वाले को उसका फल मिल गया, समझना चाहिए। परन्तु ऐसी बात है नहीं शराबी को, विष खाने वाले को तथा जलकर मरने वाले को अपने अपने कर्मों का फल मिलना अभी शेष है। यहाँ नशा-मृत्यु एवं जल जाना कर्म के फल में नहीं अपितु प्रभाव स्वरूप है। These are not the fruits of the actions. but are the effects of the actions.

प्र०-३१ क्या इस जन्म के सभी कर्मों का फल अगले जन्म में मिलता है ?

उत्तर कुछ लोगों की मान्यता है कि इस जन्म में हम जो कर्म करते हैं उनका फल भावी जन्मों में ही मिलेगा। एव इस जीवन में हम केवल पिछले जन्मों के ही कर्मों का फल भोगते हैं, वर्तमान कर्मों का नहीं। देखें "Auto Biography of soul."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति स्मृति संग्रह 8902

"By Shri K. N. Kpoor (Page-44) "The fruit accrues to the doer not in this life but in some subsequent life"

तथा स्वामी दर्शनानन्द जी कृत उपनिषद् प्रकाश (प्रश्नोपनिषद) (२/५४)। हमें उक्त धारणा अनुचित होने से अतिरिक्त, योग दर्शन की इस मान्यता के विरुद्ध भी प्रतीत होती है। योग दर्शन साधन पाद सूत्र १२ हमें बताता है कि –

'कलेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय: ।"

अर्थात कुछ कर्मों का फल दृष्ट अर्थात् इसी जन्म में और कुछ का अदृष्ट अर्थात् अगले जन्म में मिलता है। इस पर महर्षि व्यास लिखते हैं कि जो तीव्र शुभ एवं अशुभ कर्म हैं वे शीघ्र ही इसी जन्म में पककर फल देते हैं।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

प्र०-३२ क्या कर्मों का निर्णय किसी विशेष दिन होता है।

उत्तर – कुछ लोगों ने ऐसा मान रखा है कि जन-कर्मों का लेखा जोखा रखने वाला चित्रगुप्त नामक देवता जीव के कर्मों की मिसल (File) धर्मराज के सम्मुख पेश करता है तब जीवों के कर्मों का निर्णय होता है। कोई-कोई न्याय के दिन (The day of judgment) जीवों के कर्मों का निर्णय होना मानते हैं और कोई कयामत के दिन। उनके अनुसार तब तक जीव दौरे सुपुर्द रहता है परन्तु यह सब बातें न तो बुद्धि-गम्य हैं न वेदानुकुल। न्याय के दिन तक के लम्बे काल तक जीव को दौरे सुपुर्द रखना मानों न्याय का गला घोटना है। A justice delayed is a justice denied. और जो कयामत के ही दिन मरा है उसका फैसला उसी दिन हो जाने से वह दौरा सुपुर्दगी से बच गया'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्बन्ध में महर्षि स० प्र० त्रयोदश समु० में (६५१) लिखते हैं। "जो कोई ईसाई होंगे वे दौरे सुपुर्द होकर ऐसा न्याय कराने के लिए रोया करेगें, जो वेद मार्ग स्वीकार करेगा उसके न्याय होने में देर न होगी। ईसाईयों से पूछना चाहिए कि क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्द है? और न्याय का काम भी नहीं होता, न्यायाधीश निकम्मा बैठा है।"

महर्षि के इस लेख से स्पष्ट है कि वैदिक धर्म में न्याय में बिलम्ब की बात कहीं नहीं। ईश्वर किसी विशेष दिन को अथवा मिसिल पेश होने पर न्याय नहीं करता अपितु न्यायकारी प्रभु का न्याय प्रतिक्षण प्रतिपल होता रहता है।

चतुर्दश समुल्लास में महर्षि लिखते हैं:—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता? किसी एक दिन न्याय करता है। इससे तो अन्धेर विदित होता है।"

पाठक देखें: कितने स्पष्ट शब्दों में महर्षि ने इस धारणा का खण्डन किया है कि जीवों के कर्मों का निर्णय किसी विशेष दिन होता है।

प्र०-३३ जीवों के कर्म फल का निर्णय कब होता है?

उत्तर— कुछ लोगों का कहना है कि जीवों के कर्म फल का निर्णय कर्म से पूर्व ही विधि ने निश्चित कर दिया है और जीव कर्म का अभिनय मात्र ही करता है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जीवों के कर्मों का निर्णय जींवों के शरीर छोड़ने पर अर्थात् मृत्यु के पश्चात् ही होता है।

हमारे विचार में उपर्युक्त दोनों मान्यतायें ठीक नहीं। क्रम से दोनों मान्यताओं पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम मान्यता कि जीवों के कर्मों का फल कर्मों से पूर्व ही निश्चित कर दिया जाता है दोषपूर्ण है। कारण कि यदि कर्म फल निश्चित है तो जीवों के कर्म भी निश्चित होने चाहिए और इस प्रकार जीव कर्म करने में स्वतन्त्र कहाँ रहा और जब कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो उसके फल भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे यह कि जुर्म किये बिना मुजरिम या इल्जाम किये बिना मुल्जिम निश्चित कर देने में जजपना क्या खाक हुआ ?

स० प्र० नवम समुल्लास (३०४) का महर्षि का निम्न प्रश्नोत्तर इसमें प्रमाण है।

प्र० "परमात्मा ने प्रथम ही जिसके लिए जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है।"

उत्तर—उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे।"

इससे स्पष्ट है कि कर्म किये जाने से पूर्व फल पर विचार नहीं होता। अतः यह मान्यता कि जीवों के भावी कर्मों के फल का निर्णय पहले से ही कर लिया जाता है मान्य नहीं हो सकता। दूसरी मान्यता कि जीवों के कर्मों का निर्णय मृत्यु हो जाने पर होता है भी, मान्य नहीं हो सकती क्योंकि बहुत से कर्मों का फल इसी जन्म में भी मिल जाया करता है

हमारी दृढ़ मान्यता है कि प्रत्येक कर्म के फल का निर्णय उस कर्म की समाप्ति के तुरन्त बाद हो जाता है। विधाता को कर्म फल का तुरन्त निर्णय करने में कोई कारण बाधक नहीं होता। यद्यपि फल का निर्णय तुरन्त हो जाता है तथापि यह आवश्यक नहीं कि वह फल तुरन्त लागू भी हो जाय। जैसे कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचित अवस्था में रहते हैं वैसे उनके फल भी संचित अवस्था में रहते हैं। जब तक कर्म फल नहीं देने लगता तब तक संचित कहलाता है और जब वही कर्म फल देना प्रारम्भ करता है तो प्रारब्ध कहा जाने लगता है। तात्पर्य यह है कि कर्म के फल का निर्णय तो कर्म की समाप्ति पर ही हो जाता है परन्तु फल-भोग जब परमात्मा उचित समझता है तब इसी जीवन में अथवा भावी जीवनमें देता है।

प्र०-३४ कर्मों का लेखा कौन रखता है ?

उत्तर कर्मों का लेखा न्यायकारी परमेश्वर ही रखता है क्योंकि वह ही पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य सत्य नियमन करता है और इसी से उस परमेश्वर का नाम अर्यमा भी है। वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर बिना किसी सहायता के अपने सब न्याय व्यवस्था आदि कार्य करने में समर्थ है अतः उसे किसी कल्पित चित्रगुप्त, कातिब, अथवा दूत या देव की आवश्यकता नहीं। यह कल्पना कि हमारे कर्मों का लेखा रखने के लिए कोई विशेष दूत नियुक्त है एक निराधार कल्पना है।

यहाँ यह भी सोचना पड़ जाएगा कि चित्रगुप्त, जिन कर्म फलों में चित्रगुप्त बनाये गये - उन कर्मों का लेखा, चित्रगुप्त की अविद्यमानता में किसने रखा उत्तर सही यही है कि जीवात्माओं के कृत कर्म परमेश्वर के ज्ञान में होने से कर्मों का खा लेदूसरे के पास नहीं रहता।

प्र०-३५ कर्मों का फल किस रूप में मिलता है ?

उ०—योगदर्शन साधनपाद श्लोक १३—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः

के अनुसार कर्म का अविद्या-आदि कलेश रूप मूल रहने पर उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों का विपाक जाति, आयु और भोग के रूप में होता है। यहां जाति से तात्पर्य "समान प्रसवात्मिका जाति" के अनुसार समान प्रसव वाले प्राणी एक जाति के माने जाते हैं जैसे मनुष्य घोड़ा, कुत्ता आदि। आयु से तात्पर्य उस जाति की समान आयु से है जैसे मनुष्य की आयु १०० वर्ष की मानी गयी है। और भोग से तात्पर्य उस जाति के प्राणियों के भोग से है। एक ही जाति के प्राणियों में भी कर्मानुसार आयु और भोग में अन्तर होता है। कर्मफल पुण्य और पाप रूप कारणों से सुख और दुःख का कारण होते हैं। अर्थात् पुण्य कर्मों का फल सुख एवं पाप कर्मों का फल दुःख होता है। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि कर्माशय जन्म, आयु व भोग का हेतु होने से त्रिविपाक अर्थात् तीन फलों वाला होता है। अथवा विपाक का अर्थ विशेष पका न समझकर यो समझें कि किसी योनि में उत्पन्न किया जाना जहाँ ईश्वर कृत-न्याय व्यवस्था से फल है-वहां आयु और भोग बिना कर्म के तो होते नहीं अतः कर्म के प्रभाव से ही, आयु और भोग मिलते हैं यदि कर्म रूप मूल न हो तो आयु और भोग बिना जड़ के पेड़ पर लगने वाले फल नहीं हैं।

प्र०-३६ क्या इस बात का पता चल सकता है कि किस-कर्म का क्या फल है ?

उ०—मनु स्मृति के बारहवें अध्याय के आधार पर महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में पाप पुण्य कर्मों की गति का वर्णन किया है फिर भी निश्चित रूप से यह पता नहीं चल सकता कि किस कर्म का फल हम भोग रहे हैं। केवल योगी योगाभ्यास आदि विशेष प्रयत्नों से ऐसा जानने में समर्थ हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७- क्या प्रत्येक कर्म का फल निश्चित है ?

उत्तर— जब प्रत्येक प्राणी का प्रत्येक प्रकार का कर्म ही निश्चित नहीं तो उसका फलउस दृष्टि से कैसे निश्चित माना जा सकता है। ईश्वर कर्मानुसार ठीक ठीक फल देता हैं इसमें कोई सन्देह नहीं पर समान कर्मों का फल अभ्यासी अनभ्यासी तथा विद्वान् और मूर्ख को अर्थात् ज्ञानी अनजानी अवस्था में किये गये कर्मों का फल समान नहीं मिलना चाहिए और न मिलता है। जितना जिस जीव के सुधार के लिए ईश्वर आवश्यक समझता है उतना ही फल देता है क्योंकि फल प्रतिकार कीभावना से नहीं सुधार की भावना से दिया जाता है। ईश्वर स्वभावतः जीवों से द्वेष रखने वाला नहीं है - उसे तो न्याय भी जीवों के कर्मो का ही करना पड़ता है यदि जीव पाप न करे तो ईश्वर न्ययातः दण्ड भी न देवे। लौकिक ईमानदार जज भी पापी से कोई द्वेष बुद्धि तो नहीं रखता है।

प्र०-३८ क्या समान कर्मों का फल विभिन्न जीवों को समान मिलता है ?

उत्तर-इसका निर्णय कार्य कर्त्ता, तथा परिस्थिति आदि के अनुसार होता है। जान बूझकर इरादे से की गई हत्या एवं बे इरादे लापरवाही से हुई हत्या का फल एक समान कैसे हो सकता है। क्योंकि दोनों हत्याओं की नौईयत अथवा कोटि समान नहीं। फिर अभ्यासी अनभ्यासी तथा ज्ञानी अज्ञानी का विचार भी होता है।

महात्मा नारायण स्वामी जी "मृत्यु और परलोक" पृष्ठ (४९) पर लिखते हैं:—"मनुष्य का भविष्य सुधारने के लिए भी अपराधों का दण्ड विधान अनिवर्य है, परन्तु वह दण्ड सबके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए एक सा नहीं हो सकता। एक लज्जाशील विद्यार्थी के लिए एक अपराध के बदले में इतना ही दण्ड पर्याप्त हो सकता है कि उसे केवल आँखों से ताड़ना कर दी जावे, परन्तु दूसरे निलज्ज विद्यार्थी को उसी अपराध के बदले में, बेंतों से दण्ड देना भी कठिनता से काफी समझा जाता है। इसलिए दण्ड की मात्रा उतनी ही पर्याप्त हो सकती है जितने से अपराधी का सुधार हो सके और वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी अवस्थानुसार पृथक पृथक हो सकती है और हुआ करती है। "यहाँ पाठकों को वह गाथा ध्यान में लानी चाहिए कि तीन समान अपराधियों को बीरबल ने भिन्न भिन्न दण्ड यही आधार रख कर दिया था। किसी कुलीन से तो केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझा कि तुम्हें अपने कुल की लाज का ध्यान रखना चाहिए। और फिर उसने वह कर्म जीवन भर कभी नहीं किया।

०प्र-३९ क्या ईश्वर कर्मों का फल दूसरों से दिलवाता है।

उत्तर--नहीं ! ईश्वर स्वयं फल देता है क्योंकि 'ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन और प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूरा कर लेता है।" स० प्र० सप्तम समु०

जब ईश्वर बिना किसी की सहायता के अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब जीवों के पाप पुण्य की व्यवस्था में समर्थ है तो कर्मों का फल दूसरों से दिलाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सत्य धर्म विचार (मेला चाँदापुर) में महर्षि लिखते हैं। "जीवों के कर्मों के फल का देना यह भी केवल परमात्मा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही काम है, किसी अन्य का नहीं।" सर्वशक्तिमान् शब्द की व्याख्या करते हुये महर्षि लिखते हैं "जो अपने कार्य करने में किसी अन्य कीसहायता नहीं लेता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इस लिए उस परमात्मा का नाम सर्वशक्तिमान् है।" (प्रथम समुल्लास)

अतः यह मान्यता कि ईश्वर कर्मों का फल दूसरों से दिलाता है ठीक नहीं। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर जो शब्द प्रयोग किये हैं उनसे भी यही सिद्ध होता है कि ईश्वर कर्मों का फल स्वयं देता है दूसरों से दिलाता नहीं। जैसे "ईश्वर कर्मफल देता हैं" कर्म फल भुगवाता है" या कर्म फल दिलाता है नहीं लिखा।

एक बात और भी विचारणीय है कि यदि कोई व्यक्ति ईश्वर की प्रेरणा से किसी को उसके कर्म फल देने के लिए कोई कर्म करे तो फिर उस कर्म का वह स्वतन्त्र कर्त्ता कहाँ रहा। दूसरे यह कि दुःखी होने वाले व्यक्ति ने क्या कुकर्म किया था, इसका ज्ञान उस व्यक्ति को तो है नहीं, फिर वह उस कुकर्म के अनुकूल ही नपातुला दुःख सुख दे यह कैसे ठीक बैठ सकता है।

प्र०-४० क्या ईश्वर किसी निमित के बिना कर्म फल नहीं दे सकता ?

उत्तर—कर्म फल देना ईश्वर का ही काम है और ईश्वर अपने सभी काम बिना किसी की सहायता के अपने अनन्त सामर्थ्य से स्वयं ही करने में समर्थ है। कर्म फल देने में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का तकाजा यही है कि ईश्वर बिना किसी माध्यम के कर्म फल दे सके। साथ ही ये बात भी विचारणीय है कि यदि निमित्त या माध्यम जो व्यक्ति है तो क्या वह स्वतन्त्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक कर्म करता है या प्रेरित होकर। यदि स्वतन्त्रता पूर्वक कर्म करता है तो दूसरों के कर्म फल से उसका क्या समबन्ध और यदि प्रेरणा से कर्म करता है तो स्वतन्त्र कर्त्ता नहीं हो सकता।

वस्तुत: निमित्त वह होता है जिसके करने से ही कार्य हो और न करने से न हो। यदि कर्म फल किसी निमित्त के द्वारा ही दिलाया जाता हो तो उस निमित्त द्वारा दिये जाने से ही फल मिल सकता है और यदि वह न चाहे तो नहीं मिल सकता इससे कितनी अव्यवस्था फैल जायेगी एवम् ईश्वर अन्यायी ठहरेगा। और यदि कोई यहाँ पर यह कहे कि उसे वह कर्म किसी को (सुखद या दु:खद) करना ही पड़ेगा तो हमारा पूर्वानुरूप उत्तर है कि फिर गैया के मार डालने में कसाई पापी नहीं ठहरेगा।

प्र०-४१ क्या राजा द्वारा दण्ड ईश्वर ही दिलाता है ?

उत्तर—यद्यपि वेदादि सत्य शास्त्रों में राजा के कर्त्तव्य तथा प्रवन्ध समबन्धी निर्देश मिलते है तथापि राज्य व्यवस्था को ईश्वरीय प्रबन्ध नही कहा जा सकता क्योंकि स्वतन्त्र कर्त्ता होने के नाते उन आदेशों के अनुसार चलने न चलने में राजादि स्वतन्त्र है। विभिन्न राज्यों में व्यवस्था या प्रबन्ध भी भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। यदि राज्य व्यवस्था ईश्वर का ही प्रबन्ध है तो सुव्यवस्था का फल एवं कुव्यवस्था का दण्ड कौन भोगेगा परमात्मा या राजा? अत:यह मान्यता कि राजा द्वारा दण्ड ईश्वर ही दिलाता है उचित प्रतीत नही होती। राजा की व्यवस्था से कभी कभी निर्दोष व्यक्ति भी दण्ड पा जाते हैं एवं कभी कभी दोषी छूट भी जाते हैं चाहे रिश्वत से चाहे अज्ञानादि से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि राजा द्वारा दण्ड ईश्वर ही दिलाता होता तो न तो निरपराधी दण्ड पा सकते और न ही अपराधी छूट सकते होते। ठीक ठीक न्यायोचित दण्ड देने पर राजा को उस न्यायरूपी शुभ कर्म का फल मिलता है एवं न्यून अधिक देने पर अन्याय रूपी दुष्कर्म का दण्ड मिलता है। यदि राजा ईश्वरीय प्रेरणा से कर्म करे तो फल का भागी नहीं हो सकता। राजा को ईश्वर या खुदा का दर्जा देना तो स्वार्थी एवं अज्ञानियों का काम है।

प्र०-४२ क्या राजा द्वारा दण्ड दिये जाने पर भी ईश्वर उस कर्म का फल देता है ?

उत्तर—अवश्य। जब राजा द्वारा दिया गया दण्ड ईश्वर की ओर से है ही नहीं तो ईश्वर फल क्यों नहीं देगा ? राजा अल्पज्ञ तथा अल्पशक्ति वाला होता है उसके राज्य से अपराधी भाग भी सकता है और वह अपराधी के मर जाने पर उसे दण्ड भी नहीं दे सकता। उसकी व्यवस्था में कभी कभी अपराधी भी छूट सकता है तथा निर्दोष भी दण्ड पा जाता है। ईश्वर की न्याय व्यवस्था से कोई भी अपराधी चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो छूट नहीं सकता और न ही उसके राज्य से भाग कर अन्यत्र कहीं जा सकता है क्योंकि सर्वत्र उसका राज्य है। ईश्वर की न्याय व्यवस्था में कोई भी निर्दोष दण्ड नहीं पा सकता क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी है। मनुष्य के बनाये राज्य नियम सर्वथा त्रुटि रहित नहीं हो सकते जबकि ईश्वरीय व्यवस्था के नियम सर्वथा निर्दोष, त्रुटि रहित एवं पूर्ण होते हैं। राजा अपराधी प्रजा को दण्ड ही देता है (वह भी पकड़े जाने पर) परन्तु प्रत्येक सुकर्मी को पुरस्कृत नहीं करता जबकि ईश्वर की न्याय व्यवस्था मे जहाँ प्रत्येक दुष्कर्मी दण्ड पाता है वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक सुकर्मी सुफल का भागी होता है अतः इन कारणों से राजा द्वारा दिया गया दण्ड ईश्वर द्वारा दिया गया नहीं माना जा सकता अतः ईश्वर द्वारा कर्म फल न दिये जाने का कोई कारण नहीं। राजा जीवों के कर्म फल भुगाने के उद्देश्य से दण्ड नहीं देता अपितु अपनी सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए दण्ड देता है। यदि राजा ऐसा न करे तो समाज में कोई व्यवस्था ही न रह।

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री अपनी प्रसिद्ध पुस्तक कर्म मीमांसा में इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"समाज में एक व्यक्ति चोरी करता है उसे राज्य की तरफ से दण्ड मिलता है। दण्ड यद्यपि उस कर्म के अनुसार राज्य ने दिया इसलिए कि यदि ऐसा न किया जावे तो समाज में कोई व्यवस्था न रह सके। आगे समाज का कोई व्यक्ति चोरी न करे इसलिए यह राज दण्ड है। परन्तु भविष्य में आगे चलकर उसके दूसरे जन्म में उसका फल न मिले ऐसा नहीं। वह भी मिलेगा। क्योंकि उसमें इस कार्य की वासना बनी है उसका निवारण तो बिना उचित फल को भोगे नहीं हो सकता। आत्म हत्या करने वाले को यहाँ फल नहीं मिल पाता परन्तु दूसरे की हत्या करने वाले को यहाँ और दूसरे जन्म दोनों में फल मिलता है। यहाँ का फल गौण होता है वहाँ का फल मुख्य होता है।"

कर्म फल जो कि जाति आदि के रूप में मिलता है ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता क्योंकि वही अगला जन्म देने वाला है अन्यथा कौन पापी स्वेच्छा से अगले जन्म में सुअरिया का बच्चा या कुतिया का पिल्ला बनना चाहता है?

प्र०-४३ राजा तथा ईश्वर की न्याय व्यवस्था में क्या अन्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर सर्वज्ञ ईश्वर तथा अल्पज्ञ राजा की न्याय व्यवस्था में उतना ही अन्तर है जितना सर्वशक्तिमान् ईश्वर तथा अल्प शक्ति वाले राजा में होता है । राजा अल्पज्ञ होने के कारण साक्षियों पर आश्रित रहता है और साक्षी द्वेष अथवा पक्षपात पूर्ण भी हो जाता है जबकि वस्तुतः साक्ष्य में सही घटना ही बतानी चाहिए अन्यथा साक्षी कैसा ? जिस कारण सत्य सत्य न्याय नहीं हो सकता परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी है एवं उसे किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं होती। राजा पक्षपात अथवा द्वेष भी कर सकता है परन्तु ईश्वर इन दोनों से परे है। राजा मनुष्यों के कर्म फल भुगाने के उद्देश्य से न्याय नहीं करता अपितु अपने राज्य में नियम एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए न्याय करता है। राजा का न्याय प्रत्यक्ष में परोपकार के लिए किन्तु परोक्ष में स्वाथ के लिए होता है। समाज में शान्ति एवं व्यवस्था राजा के अपने हित में ही होती है यदि शान्ति एवं व्यवस्था न हो तो प्रजा में अशान्ति तथा विक्षोभ होता है जो विद्रोह का कारण बनता है। अतः राजा समाज में व्यवस्था एवं शान्ति अपने राज्य को स्थिर रखने के लिए चाहता है जब कि ईश्वर को न तो अपने राज्य को स्थिर रखने की चिन्ता है न पदच्युत होने की। अतः ईश्वरीय न्याय ही सर्वथा स्वार्थ रहित जीवों के कल्याण के लिए ही होता है।

प्र-४४ जब राजा कर्म फल दाता नहो तो वेदादि सत्य शास्त्रों में राजा को दण्ड देने की आज्ञा क्यों दी गई है ?

उत्तर—वेदादि शास्त्रों में राजा को दण्ड देने का विधान कर्मफल भुगाने के लिए नहीं अपितु समाज के कल्याण एवं सुधार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए है। यदि राजा दण्ड न दे तो प्रजा को कुकर्मो से भय न हो। राजा अपराधी को दण्ड देकर जहाँ उसका सुधार करता है वहाँ समाज का भी बड़ा उपकार करता है। राजा के दण्ड के भय से प्रजा कुकर्मों में प्रवृत नहीं होती और दुःखों से बच जाती है।

प्र०-४५ क्या बिना कर्म के फल मिलता है ?

उत्तर—नहीं ! बिना कर्मों के फल देने से ईश्वर अन्यायी ठहरता है। ईश्वर न्यायकारी है और न्याय कर्मों की अपेक्षा रखता है। फल कर्मों का ही मिला करता है जब कर्म ही नही किये तो फल कैसा ? जब बोया नहीं तो काटना कैसा ? इसलिए वैदिक परमेश्वर और इस्लामी या ईसाइयत के खुदा में स्पष्ट अन्तर है कि जो पूर्व जन्म के कर्मों के अभाव में भी किसी को अन्धा लूला गरीब अमीर आदि बना डालता है।

प्र—४६ क्या यज्ञ आदि विहित कर्म न करनें पर पाप होता है ? यदि हां तो क्या यह बिना कर्म के फल नहीं ?

उत्तर यज्ञादि विहित कर्मों के करने का वेद में आदेश है। विहित कर्मों के न करने से ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन होता है और ईश्वराज्ञा का उल्लंघन पाप है अत: यज्ञादि विहित कर्मों के न करने से जो दण्ड मिलता है वह भी बिना कर्म के नहीं अपितु ईश्वराज्ञा के उल्लंघन रूपी कर्म का फल है।

प्र०-४७ क्या कर्मों के विपरीत न्यूनाधिक फल भी होता है ?

उत्तर कर्मों का फल न्यूनाधिक नहीं होता जो जैसा करता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसा और उतना ही फल पाता है। Every man gets measure for measure.

यदि कर्मों का फल न्यूनाधिक हो तो न्याय की हत्या हो जायेगी जबकि ईश्वर का स्वभाव ही द्वेष तथा पक्षपात रहित हो सत्य सत्य न्याय करना है। सत्य न्याय का तकाजा है कि कर्मों का फल पूरा पूरा न न्यून न अधिक दिया जाये।

प्र०-४८ क्या एक के कर्मों का फल दूसरे को मिलता है ?

उत्तर—फल कर्त्ता को ही मिला करता है अन्यथा 'करे कोई भरे कोई' की उक्ति चरितार्थ हो जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने काम के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होता है और उस कर्म का फल भी उसी को भोगना होता है। यह बात और है कि एक के कर्म के प्रभाव से दूसरे को दुःख सुख प्राप्त हो जाय। जहाँ बाप के धनित्व से बेटा मौज उड़ाता है वहाँ निर्धन पिता का पुत्र भी किसी धनी का मुतबन्ना बन जाने पर गुल छर्रे उड़ाता है।

प्र०-४९ क्या जीवों को सभी सुख दुःख अपने कर्मों के फल स्वरूप ही मिलते हैं ?

उत्तर—प्रायः यही समझा जाता है कि जीवों को सभी सुख दुःख उनके पूर्वकृत कर्मों के फल स्वरूप ही मिला करते हैं परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके प्रत्येक कर्म के फल में सुख दुःख अवश्य भोगने पड़ते हैं। परन्तु सभी सुख दुःख अपने कर्मों के फल स्वरूप ही मिलते हों ऐसी बात नहीं। प्राणी अपने कर्मों के फल में एवम् अन्यों के कर्म मात्र से अपने कर्म फल में नहीं, किन्तु दूसरे के या अपने कर्म के प्रभाव से भी सुखी दुःखी हुआ करते हैं। सुख दुःख प्राप्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त यह है कि जीव अपने कर्म एवं कर्म फल दोनों से तथा दूसरों के केवल कर्म से (कर्मफल से नहीं) सुखी दुःखी हुआ करते हैं। As an after effect of the action and not in the fruits of those actions as the fruit of the action acrues to the door only.

दुःख तीन प्रकार के होते हैं।

१—आध्यात्मिक २—आधिभौतिक ३—आधिदैविक।

इनमें से केवल कुछ आध्यात्मिक ही ऐसे हैं जो अपने कर्मों के फल स्वरूप मिलते हैं। शेष अपने तथा दूसरों के कर्मों के प्रभाव से एवं प्राकृतिक उद्वेगों के कारण मिला करते हैं। उनसे अपने कर्म फल का कोई सम्बन्ध नहीं होता।

नोटः—सुख दुःख प्राप्ति के इस सिद्धान्त को समझने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों के गम्भीर अनुशीलन के साथ साथ पडित लेखराम आर्य मुसाफिर कृत कुलियात आर्य मुसाफिर पुनर्जन्म प्रकरण, महात्मा नारायण स्वामी कृत "कर्म रहस्य," "आर्य समाज क्या है" एव 'कर्तव्य दर्पण', आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री कृत कर्म मीमाँसा और पडित दीनानाथ सिद्धान्तालंकार कृत आर्य समाज की उपलब्धियाँ आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय एवं गम्भीर चिन्तन अवश्यक है।

प्र०-५० कोई व्यक्ति किसी को सुख या दुःख पहुँचाता है तो क्या सुखी या दुःखी होने वाले व्यक्ति के अपने भी कोई ऐसे कर्म थे कि जिनके कारण उसे सुख या दुःख मिला।

उत्तर—कर्म मीमांसा का यह अत्यन्त जटिल प्रश्न है। विद्वानों का भी इस पर मतैक्य नहीं। हमारी दृढ़ मान्यता है कि एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति जब दूसरे को कष्ट पहुँचाता है अथवा सुख देता है तो दुःखी अथवा सुखी होने वाले व्यक्ति के अपने कर्म फल का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता। कर्त्ता के स्वतन्त्रता पूर्वक किये जा रहे नवीन कर्म से वह सुखी अथवा दुःखी हुआ करता है और वह कर्त्ता उस कर्म का फल भविष्य में भोगेगा।

सोचिये तो सही! यदि प्रत्येक सुख पाने वाले ने अपने कर्मों के फल में ही सुखी होना है तो हमारे परोपकार दान, सेवा आदि-सुख कारक कर्मों का महत्व ही क्या रह जाता है? इसी प्रकार यदि प्रत्येक दुःख पाने वाले ने अपने ही पूर्व कर्म-फल में दुःख पाना है तो कोई चोरी हत्या आदि कुकर्मों से क्यों हटने लगा। और फिर किसी के प्रारब्ध का हमारे स्वतन्त्रा पूर्वक किये जा रहे नवीन कर्मों से सम्बन्ध ही क्या है?

इसी प्रकार के एक प्रश्न का उत्तर पं० लेखराम आर्य मुसाफिर, "कुलियात आर्य मुसाफिर" भाग १ पुर्नजन्म प्रमाण पृष्ठ ३९० पर देते हैं। प० जी लिखते हैं—'यदि कोई भूखे को भोजन खिलाये या किसी गरीब को रुपया दे, या किसी को शिक्षा प्रदान करे तो यह बात बहुत उत्तम एवं परोपकार की है। वह पिछले कर्मों का फल नहीं, अपितु यह नया कर्म है। इसका फल उपकार करने वाले को ईश्वर देगा। इस विषय में यह विचारना सर्वथा भ्रान्त है कि यह उसके पिछले जन्म के कर्मों का फल है। बड़े खेद की बात है कि आप अज्ञानवश या जान बूझकर धोखा देते हैं और कर्म तथा फल को अथवा कर्म और परिणाम को आपस में गड़बड़ कर देते हैं।"

ऐसा ही एक प्रश्न महात्मा नारायण स्वामी जी "कर्म रहस्य में उठाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०–क्या एक के कर्म से दूसरे को दुःख प्राप्त होने में दुःख भोगने वाले के कर्म भी शामिल हुआ करते हैं ?

उत्तर हमारा निश्चित उत्तर नकार में है। अर्थात् एक के कर्म से दूसरे को प्राप्त दुःख सुख उस सुखी दुःखी होने वाले के कर्म फल स्वरुप नहीं है। क्योंकि जिसके किये कर्म से दूसरे को सुख दुःख प्राप्त हो रहा है वह मनुष्य अपने उस कार्य को स्वतन्त्र होकर कर रहा है, ईश्वर से प्रेरित होकर नहीं।''

महर्षि दयानन्द सरस्वती का कोमल हृदय भी निरपराध गौओं को कटता देख द्रवित हो प्रभु से प्रार्थना करने लगता है– ''हे परमेश्वर ! तू क्यों इन पशुओं पर जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता ?'' (देखें गोकरूणा निधि) और 'ईश्वर ने बिना पूर्व जन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से (गऊों को) दारूण दुःख क्यों दिलाया ?'' (स० प्र० १४) यहाँ गऊों के कटने में उनके अपने पिछले कर्म हेतु होते तो महर्षि दयानन्द सरीखा तत्ववेता योगी गऊों को ''बिना अपराध मारा जाना'' क्यों लिखता।

स्पष्ट है कि महर्षि के मत में गौएँ यह कष्ट अपने किसी पूर्व कर्म के फल स्वरूप नहीं अपितु हत्यारे के स्वतन्त्र कर्म से ही पा रही है। साथ ही यह कि यह कष्ट गौओं को ईश्वर ने नहीं दिलाया है। इस बात को स्वामी जी की प्रश्नात्मक वाक्यावलि स्पष्ट कर रही है।

महात्मा नारायण स्वामी 'कर्म रहस्य' में लिखते हैं 'एक के कर्म से दूसरे को दुःख प्राप्त होने में क्या दूसरे के कर्म फल भी शामिल हुआ करते है ? कोई सज्जन इसका उत्तर हां में देते हैं एवं दे सकते हैं परन्तु हमारा भली भाँति सोचा विचारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उत्तर नकार में हैं। जो सज्जन प्रश्न का उत्तर हाँ में देते हैं उनका सबसे बड़ा हेतु यह है कि उनकी दृष्टि में कर्म का मौलिक सिद्धाँत यह है कि प्रत्येक पुरुष अपने ही कर्म फल से सुखी या दुःखी हो। इसलिए यदि किसी को किसी दूसरे के कर्म से दुःख या सुख प्राप्त हो, तो उसके लिए यही समझना चाहिए कि उसमें उसके कर्म फल भी शामिल है।" यहा स्वामी जी एक प्रश्न करते हुये लिखते हैं:--"ऐसा कहने वाले यह नहीं बतलाते कि इस मौलिकता की झांकी उन्हें कहां हुई? किसी बात को निर्णीत समझने के दो ही हेतु हो सकते हैं तर्क और प्रमाण। जहाँ तक मुझे मालूम है इस मौलिकता के समर्थक अपने पक्ष में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं करते न मेरी दृष्टि में ही इस प्रकार का कोई प्रमाण वेद शास्त्र में कहीं आया है। रहा तर्क वह इस पक्ष का समर्थक नहीं।"

प्र०-५१ जब गौओं के ऐसे कोई कर्म नहीं थे कि वे मारी जायें तो वे निर्दोष क्यों मारी जाती हैं?

उत्तर—गौएँ अपने किसी पूर्व कर्म के फल स्वरूप नहीं अपितु कर्त्ता के स्वतन्त्रता पूर्वक किये जा रहे नवीन कर्म से मारी जाती हैं और निर्दोष गौओं को मारने के कारण ही तो हन्ता पाप का भागी होता है। यदि गौओं के अपने कर्म होते तो निर्दोष के वध का प्रश्न ही नहीं उठ सकता एवं हन्ता पर कोई दोष नहीं आ सकता था पर यहाँ हन्ता इसीलिए दोषी है कि उसने व्यर्थ एक निर्दोष का वध कर दिया। महात्मा नारायण स्वामी ने "आत्म दर्शन" में इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों में दिया है:—"हन्ता का कुकर्म तो यही था कि उसने व्यर्थ एक दूसरे प्राणी का वध किया, इसलिए तो वह दण्ड पाता है।" कोई कोई सज्जन इसमें यह तर्क देते हैं कि गौओं को तो अपने पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों के अनुसार मरना ही था परन्तु हत्यारे को मारने का अधिकार नहीं था अतएव वह अनाधिकार चेष्टा के लिए दोषी है। परन्तु हमारी समझ में तो यह बात नहीं आती कि ऐसा कहने वालों को इस बात का इल्हाम कैसे हुआ कि गौओं को अपने पूर्व कर्मों के अनुसार मरना ही था। फिर जब गौओं को मरना ही था और हत्यारे ने मार दिया तो हत्यारा हत्या के लिए दोषी न होकर केवल ईश्वर की आज्ञा न लेकर भी ईश्वर को इष्ट चेष्टा करने के लिए दण्डनीय होना चाहिए। ऐसा मान लेने से जिस प्रकार हनन में अनाधिकार चेष्टा का प्रश्न होता है उसी प्रकार परोपकार दान आदि सुखकारक कर्मों के लिए भी अनाधिकार चेष्टा का प्रश्न उत्पन्न हो जावेगा क्योंकि वैसा करने का अधिकार कर्त्ता को प्राप्त न था और इस प्रकार वध आदि दुष्कर्मों तथा परोपकार आदि सुकर्मों में दोनों के लिए अनाधिकार चेष्टा के अपराध में एक समान दण्डनीय होना चाहिए। अतः यह सब तर्क थोथे तथा निराधार प्रमाणित हो जाते हैं कि गौएँ अपने पूर्व कर्मो के फल में मारी जाती है परन्तु हन्ता ने मात्र अनाधिकार चेष्टा से उनका वध कर दिया। वास्तविकता यही है कि गौएँ निरपराध बिना अपने पूर्व कर्म फल के हत्यारे के स्वतन्त्रा पूर्वक किये जा रहे नवीन कर्मों से मारी जाती हैं। जिसके लिए हत्यारा दोषी है एवं उसका फल वह भविष्य में पाता है। आर्य समाज के एक माने हुए विद्वान् ने जब यह कहा था कि गौ को तो उस समय अपने कर्मफल ईश्वरीय न्याय व्यवस्था से मरना ही था, पर कसाई से प्रभु ने गाय मार डालने को कब कहा था अतः कसाई पापी हुआ तो इसके उत्तर में हमारा कथन यह था कि यदि कसाई उस समय वैसे न मारता, तो जहाँ प्रथम प्रश्न यह है कि सम्भव है कि कसाई ने ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दिष्ट समय पर नहीं मारा हो किसी अन्य समय में अर्थात् आगे पीछे ही मार दिया हो और दूसरे यह कि जज के आदेश का पालक जल्लाद तो वेतन पाता है तब कसाई यदि उस काम को न करता तो जज प्रभु की और से ठीक उसी समय उसी कष्ट से गैया को वध कर देने वाला प्रभु नियुक्त जल्लाद वहाँ क्यों गैर हाजिर रहा था क्या वह कसाई की अपेक्षा कमजोर होने से भाग पड़ा। फिर प्रभु नियुक्त जल्लाद कैसा ? इसका उत्तर कोई नहीं है। यथा समय जल्लाद के द्वारा दण्ड न मिलने में वही कष्ट कसाई द्वारा यदि ठीक उसी समय भी दिया मान लिया जाय तो जल्लाद की अनुपस्थिति या कमजोरी ईश्वर की न्यायकारिता में रोड़ा अटका देती है।

प्र०-५२ न्यायकारी प्रभु द्वारा दण्डित व्यक्ति को अपराधी जानकर कष्ट देना उचित है कि नहीं ?

उत्तर—सर्वथा अनुचित एवं पाप है। अन्धे को अन्धा कहना सत्य होते हुए भी वर्जित एवं पाप कर्म है ईश्वर के प्रति अपराधी को अपना अपराधी मानना महान भूल है। अपराधी को दण्ड केवल न्यायाधीश ही दे सकता है। God does not permit any body who so ever he may be to take law in his own hands.

विपरीत इसके अन्धे, लूले, लँगड़े, कुष्ठी आदि दीन दुखियों की सहायता करता शुभ कम एवं धर्म माना गया है।

आपको क्या अधिकार है कि एक जेल में दण्ड पाते हुए कैदी के आप भी दस पाँच बेंत कस आवे ? परिणाम स्वयं सोचने का कष्ट करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-५३ क्या पाप क्षमा नहीं होते ?

उत्तर– जैसा कि प्र० १२ के उत्तर में बता चुके हैं–कृत कर्म का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं इसलिए क्षमा का कोई प्रश्न नहीं उठता।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।"

"अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः (देवी भागवत)

महर्षि दयानन्द उपदेश मंजरी (पूना प्रवचन) में लिखते हैं:–– "पाप पुण्य का हिस्सा बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता अर्थात् पापों को भोगना ही पड़ेगा।"

सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास में महर्षि लिखते हैं – "जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों के धन, राजपाट (और) अंधों को आँख मिल जाती, कोढ़ियों का रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता इसलिए पाप पुण्य किसी का नहीं छूटता।"

प्र०-५४ क्या प्रार्थना प्रायश्चित आदि भी पाप-फल-भोग से नहीं बचा सकता ?

उत्तर—नहीं ! बिना भोगे पाप का छुटकारा नहीं होता। डा० राम चरण महेन्द्र इस सम्बन्ध में एक स्थल पर लिखते हैं— "साधारण लोग समझते हैं कि प्रार्थना का अभिनय कर हम परमपिता परमात्मा को फुसला सकते हैं। बच्चों की तरह मीठी मीठी बातें करके उस परम चतुर सत्ता को लुभा सकते हैं, यह दृष्टि-कोण गलत है।"

इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वान "मिल्टन" लिखते हैं:—

If by prayer incessant, I could hope to change the will of Him who all things can, I would not cease to weary Him with my assidious cries."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यदि सतत प्रार्थना के द्वारा मैं उस प्रभु की इच्छा बदल सकने की आशा कर सकता तो मैं अपनी परिश्रम पूर्ण लगातार पुकारों से उसे परेशान करना कभी बन्द न करता।

हम देखते हैं कि कभी कभी हमारी पूर्ण मनोयोग पूर्वक की गई प्रार्थना भी स्वीकृत नही होती। ऐसा क्यों होता है? इसीलिए कि हम कितने ही आर्तभाव से अथवा चिकनी चुपड़ी प्रार्थना क्यों न करें। ईश्वर के कर्म फल विधान को बदला नहीं जा सकता जैसा कि श्री कर्म नारायण कपूर 'Auto Biogaphy of Soul' में लिखते हैं: "But very often my prayers go unheaded. This is because even my earnest prayers cannot alter by even a jot the Karmic requittal due to me and others for whom I pray." अर्थात् बहुधा मेरी प्रार्थना की सुनवाई नहीं होती। यह इसलिए कि मेरी आतुरता पूर्वक सच्ची प्रार्थना भी ईश्वर के कर्म फल विधान को रत्ती भर भी नहीं बदल सकती। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास में ब्रह्म समाजियों को सम्बोधन करते हुए लिखते हैं: - 'एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चाताप और प्रार्थना द्वारा पापों को निवृति मानते हो। इसी बात से जगत में बहुत पाप बढ़ गयेहैं।" अतः सिद्ध है कि प्रार्थना प्रायश्चित आदि द्वारा भी कर्म फल भोग से छुटकारा नहीं होता। सच तो यह है कि कृत पाप के फल से छूटने के लिए प्रार्थना प्रायश्चित आदि का उपयोग किया ही नहीं जाना चाहिए। प्रार्थना आदि तो पाप के फल से नहीं पाप की वासना से छूटने के लिए की जानी चाहिए।

प्र०-५५ जो ईश्वर पापों को क्षमा नहीं करता तो दयालु कैसा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर – पापों को क्षमा करने का नाम दया है ही नहीं। उसको तो अन्याय कहा जायेगा। न्याय का तकाजा है कि प्रत्येक कर्म का पूरा पूरा Measure to Measure फल दिया जाये। यदि ईश्वर पापों का फल न देकर क्षमा कर दे तो अन्यायकारी ठहरता है। "A God all mercy is a God unjust." God cannot be just if He does not punish evil deeds or punishes them inadequately."

केवल दया करने वाला ईश्वर (अर्थात् पाप फल न देने की दया करने वाला) प्रभु न्यायकारी नहीं हो सकता यदि ईश्वर पापों के लिए दण्ड नहीं देता या कम देता है तो वह न्यायकारी नहीं हो सकता। अतः यह शंका कि पापों को क्षमा न करने वाला ईश्वर दयालु नहीं हो सकता सर्वथा निराधार है क्योंकि ईश्वर जहाँ दयालु है वहाँ न्यायकारी भी है। पापों के फल को क्षमा न करने पर भी ईश्वर की दया में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि न्याय भी एक प्रकार की दया ही है। पापों को क्षमा न करता हुआ भी ईश्वर दया ही का प्रदर्शन करता है। अतः क्षमा न करता हुआ भी ईश्वर दयालु ही है। प्रभु वह डाक्टर है जो रोगी से द्वेष नहीं रखता. परन्तु ऐसा दयालु नहीं है कि रोगी के चीख पुकार रूप कष्ट की पर्वाह में भले प्रकार आपरेशन द्वारा उसके जख्म के मवाद को साफ न कर दे। क्या आप्रेशन कर रोगी को रोगमुक्त करना निर्दयता है ?

प्र०-५६ दो विरोधी गुण न्याय और दया ईश्वर में एक साथ कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं, भिन्न भिन्न गुण एक साथ किसी भी पदार्थ में रह सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा नारायण स्वामी "मृत्यु और परलोक" में इस विषय को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं: न्याय और दया परस्पर विरोधी गुण नहीं है। इनके समझने में साधारण पुरुष ही नहीं किन्तु कभी कभी उच्च कोटि के विद्वान भी गलती किया करते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने भी इसी प्रकार की भूल की है। उसने ईश्वर को अज्ञेय (Unknowable) प्रमाणित करने के लिए एक हेतु यह भी दिया कि न्याय और दया दो विरोधी गुण किस प्रकार एक ही व्यक्ति में इक्ट्ठे हो सकते हैं। इस प्रकार के पक्ष का समर्थन करने वाले एक भूल किया करते हैं और वह भूल यह है कि वे दया का भाव अपराधों को माफ करना समझ लिया करते हैं। अपराधी को माफ करना दया करना नहीं, किन्तु अन्याय है और दया और अन्याय एक भाव बतलाने वाले शब्द नहीं, किन्तु एक दूसरे के सर्वथा विरूद्ध हैं।" न्याय और दया का भेद बतलाते हुये महात्मा जी आगे लिखते हैं:—"दया और न्याय में अन्तर यह है कि न्याय कर्म की अपेक्षा रखता है, यदि कोई पुरुष कर्म न करे तो कोई न्यायधीश न्याय नहीं कर सकता। परन्तु दया, दयालु अपनी ओर से किया करता है। दया के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं है। दोनों में जो अन्तर है वह स्पष्ट हो गया कि न्याय के लिए कर्म की अपेक्षा है परन्तु दया के लिए कर्म अपेक्षित नहीं।"

प्रभु ने सूर्य चन्द्रादि का प्रकाश, वायु संचालनादि अपनी दया से किया है। अतः हमें उसका कृतज्ञ होना ही चाहिए। न्यायकारी द्वारा कृत न्याय पर यदि हम कृतज्ञ न भी हो तो हम कसूरवार नहीं।

प्र० ५७—ईश्वर पाप कर्म करने से क्यों रोकता है ?

उ०—जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर मनुष्य को इस कर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता का हनन नहीं करता जब तक कि वह कर्म कर रहा होता है। इतने पर भी ईश्वर भय, शंका, लज्जा आदि उत्पन्न कर कर्त्ता को एक प्रकार से रोकने का उपक्रम अथवा प्रेणा करता है।आगे उस स्वतन्त्र कर्त्ता की इच्छा है कि उस संकेत को माने या न माने। कुछ लोग इन संकेतों को आत्मा की आवाज़ कहते हैं परन्तु महर्षि दयानन्द इसे ईश्वर की ओर से होना मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास में महर्षि लिखते हैं:—
"जब आत्मा, मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगता व चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय, जीव की इच्छा ज्ञान आदि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा अच्छे कामों के करने में अभय निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है"

जीव अपने कर्म स्वातन्त्र्य के कारण इन सकेतों की अवहेलना कर देता है। बार बार अनसुना कर देने के कारण यह आवाज बन्द सी होती चली जाती है। यह नहीं कि आवाज कहीं चली जाती है अपितु हम ही उसकी अवहेलना करते करते उस आवाज के प्रति बहरे हो जाते हैं। और इस प्रकार से निम्न उक्ति को चरितार्थ करते हैं:—

God often visits us but most of the time we are not at home." इस बात को इस ढंग से भी समझें कि वही अध्यापक अपने उसी शिष्य को, परीक्षा भवन में गलत उत्तर लिखता हुआ देखकर भी इन्विजिलेशन के कर्त्तव्यवश उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सही उत्तर नहीं लिखवा देता है तो क्या वह इन्विजिलेटर उस शिष्य के प्रति निर्दयी है ? अथवा स्वकर्त्तव्य के प्रति सजग है ? हां ! यदि अध्यापनकाल में उसने ठीक नहीं पढ़ाया हो, तो यह उसकी नालायकी है यह दोष प्रभु में इसलिये नहीं कि उसने तो आदि सृष्टि में ही पाप-पुण्य ठीक ठीक पढ़ा दिये ।

प्र० ५८–जिस अपराध का हमें पता नहीं उसका फल क्यों भोगना पड़ता है ?

उ०—लौकिक न्याय विधान की भाँति ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में अपराधी को उसका अपराध बताया जाना आवश्यक नहीं। लौकिक न्यायाधीश सर्वज्ञ नहीं होता इसलिये वह अपराधी को उसका अपराध सुनाकर उसे स्वीकारने को कहता है और न स्वीकारने पर उसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है और अपराध प्रमाणित होने पर ही दण्ड दिया जाता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि कोई निर्दोष व्यक्ति दण्ड न पा जाये। ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा किसी निर्दोष को दण्ड दिये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः अपराधी को उसका अपराध सुनाया जाना आवश्यक नहीं। ईश्वरीय कर्म फल व्यवस्था के अन्तर्गत पुनर्जन्म का वैदिक सिद्धाँत निहित है। पूर्व जन्मों के बचे खुचे जिन कर्मों का फल जो हमें इस जन्म में मिलता है उन कर्मों को सुनाये जाने का अर्थ यह हुआ कि विगत जन्मों तथा वर्तमान जन्म की घटनाओं की उस फल के साथ याद दिलायी जाये। इस प्रकार सीधा प्रश्न उत्पन्न होता है कि पूर्व जन्म की स्मृति क्यों नहीं होती ? योगदर्शनकार पूर्वजन्म स्मृति की बात स्वीकारता है। हम चाहे तो योगाभ्यास द्वारा पूर्व जन्मों का हाल जान सकते हैं। परन्तु साधारणतया पूर्व जन्म की बात तो दूर रही इसी जन्म की बातें भी हम कहां याद रख पाते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्मृति तो करूणामय भगवान को एक अनुपम देन है। यदि यह न होती तो हम जाने कब के पागल हो गये होते। भूतकाल की स्मृतियों से परेशान होकर कोई कवि कहता है -

"यादे माज़ी अज़ाब है या रब।
छीन ले मुझसे हाफ़िज़ा मेरा॥"

अर्थात् बीते दिनों की याद दुःखदायी है। हे प्रभु! मुझसे मेरी वह स्मृति छीन ले। तनिक सोचिये तो सही, जिन जीवों के पूर्व जीवन बड़े भयानक एवं कष्टों से बीते हैं क्या वे उन्हें बार बार स्मरण कर परेशान नहीं होंगे? क्या वे अपना वर्तमान जीवन सुख चैन से बिता सकते हैं? कदापि नहीं। उनका जीवन झींकते ही गुजरेगा इसलिये हम तो समझते हैं कि यह उस परम करुणामय भगवान की असीम कृपा है कि हमें अपने पूर्व कर्मों तथा घटना क्रम का स्मरण नहीं होता।

वस्तुतः पूर्व दुष्कर्मों की यदि किसी को स्मृति न आवे तो यह विस्मृति उसे शान्ति अथवा चैन देने का कारण बन जावेगी।

प्र०-५९ भाग्य किसे है? उसके निर्माता कौन है?

उत्तर—भाग्य, प्रारब्ध, दैव, कर्मफल कर्म विपाक आदि एक ही भाव को दर्शाने वाले शब्द हैं। हमारे अपने ही कर्म जब फलोन्मुख होने लगते हैं तो उसे प्रारब्ध या भाग्य कहा जाता है। इस प्रकार अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं ही है। हम प्रतिक्षण जो कम करते है वे ही कालान्तर में हमारा भाग्य बन जाते हैं।

महात्मा नारायण स्वामी इस सम्बन्ध में "विद्यार्थी जीवन रहस्य 'नामक पुस्तक में लिखते हैं:—"मनुष्य जब कर्म करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और जब तक कर्म फल देने योग्य नहीं हो जाता तब तक कर्म की पहली हालत रहती है और इस रूप वाले कम को क्रियामाण कहते हैं और जब कर्म पूरा होकर फल देने योग्य होकर किये हुये कर्मों के भण्डार में जमा हो जाता है तब उसे संचित कहने लगते हैं और उन्हीं संचित कर्मों में से जिस कर्म का फल मिलने लगता है उसी को प्रारब्ध कहने लगते हैं। अत: स्पष्ट हो गया प्रारब्ध मनुष्य के किये हुये कर्म ही के अनुरूप होता है। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कहीं से लिख लिखा कर मनुष्य के सिर थोपी जाती हो। प्रारब्ध बनाने वाले अपने कर्म ही होते हैं।"

I am the builder of my fortune. I am the Master of my destiny. बिना कर्म के भाग्य मानना कोरा अज्ञान है। यह निश्चित है कि सुकर्म से ही सौभाग्य और दुष्कर्म से ही दुर्भाग्य सामने आया, आता है और आयेगा।

प्र०-६० भाग्य प्रबल है या पुरुषार्थ।

उत्तर—पिछले प्रश्न के उत्तर में यह बतलाया गया है कि अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं ही हैं। स्पष्ट है कि जब अपने पुरुषार्थ से ही भाग्य बना और जैसा पुरुषार्थ वैसा ही भाग्य बना तो कारण के अनुरूप कार्य होने से पहले कारण पीछे कार्य के समान पहले बना पुरुषार्थ और पीछे उसके भाग्य। महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं:—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते हैं, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।" सोचिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कौन सा उकदा है जो वा हो नहीं सकता.
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।

प्र०-६१ क्या हम अपने भोगों में परिवर्तन कर सकते है ?

मनुष्य चाहे तो पुरुषार्थ द्वारा अपने भोगों में परिवर्तन कर सकता है क्योंकि भोग प्रारब्ध का एक अङ्ग है और प्रारब्ध से पुरुषार्थ बड़ा माना गया है। प्रबल पुरुषार्थ से नवीन प्रारब्ध बनकर पूर्व प्रारब्ध जनिष्यमाण भोगों से आगे हो जाता है। इस प्रकार पूर्व भोगों के साथ नवीन भोग सम्मिलित हो जाने से परिवर्तन तो हो ही गया। आर्य दार्शनिक प० गंगा प्रसाद उपाध्याय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कर्म-फल सिद्धांत'' में इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों में देते हैं:—"चाहें तो कर सकते हैं या यों कहना चाहिए कि अवश्य कर सकते हैं और करते रहते हैं।"

बरेली में पादरी टी० जे० स्काट से दिनाँक २५ अगस्त १८७९ को पुनर्जन्म सम्बन्धी शास्त्रार्थ करते हुये महर्षि कहते हैं:—(मनुष्य) क्रियमाण कर्म नये नये करता जाता है उनका संचित और प्रारब्ध भी नया नया होता चला जाता है।"

प्र०-६२ आयु घट बढ़ सकती है या नहीं ?

उत्तर--ब्रह्मचर्य तथा संयममय जीवन यापन से आयु बढ़ जाती है एवं व्यभिचारमय असंयमित जीवन से आयु घट जाती है। महर्षि दयानन्द आयु का घटना बढ़ना मानते हैं। ऋगवेदादि भाष्य भूमिका वेद संज्ञा विचार प्रकरण में महर्षि लिखते हैं:—"मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु कर सकता है, अर्थात् (४००) चार सो वर्ष तक भी सुख पूर्वक जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है।" महर्षि ने अन्य कई स्थलों पर भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं।

जब यह तय हो चुका कि पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है एवं मनुष्य जैसे जैसे नवीन कर्म करता जाता है तो उसका संचित और प्रारब्ध भी नया नया होता चला जाता है तब प्रारब्ध से उत्पतत्यमान आयु आदि में परिवर्तन क्यों नहीं हो सकता? वह पहले ही स्थान पर कैसे डटी खड़ी रहेगी जब कि उसके उत्पादक कर्मों को वर्तमान कर्मों ने अपनी जगह से हिला दिया?

प्र०-६३ क्या आयु की गणना श्वासों पर आधारित है?

उत्तर– कुछ लोग आयु की गणना अथवा इयत्ता वर्षों में न मानकर श्वासों पर मानते हैं। परन्तु हमारे विचार में श्वासों के साथ आयु का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुये भी प्राणियों की आयु को श्वास-प्रश्वास में विभक्त नहीं माना जा सकता। ऐसा ही मत पूज्यपाद स्वामी ओमानन्द जी ने भी 'ब्रह्मचर्य के साधन" भाग ६ पृष्ठ ३३ पर व्यक्त किया है। वे लिखते हैं:–"प्राणियों की आयु को श्वास प्रश्वासों में तो विभक्त नहीं माना जा सकता, किन्तु जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये नियम पूर्वक प्राणायाम करते हैं वे जहाँ शरीर मन आदि से नीरोग रहते हैं वहाँ उनकी आयु में भी वृद्धि हो जाती है।"

पूज्यपाद अमर स्वामी जी महाराज का कथन है कि आयु श्वासों पर टिकी हुई है, ऐसा कोई प्रमाण वेद में नहीं। विपरीत इसके वर्षों में होने के बहुत से प्रमाण हैं। वेद में ऐसे भी अनेक मन्त्र हैं जिनमें आयु और प्राणों की एक साथ कामना की गई हैं। यदि प्राणों का नाम ही आयु होता तो आयु और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण इन दो की कामना अलग अलग क्यों की गई। "स्तुतामया ···आयुः, प्राणं, प्रजां··" इत्यादि में स्पष्ट देख लें। हाँ प्राणों की सबलता आयु की वृद्धि हेतुभूत हो सकती है कि जैसे सुव्यवस्थित खान पान रहन, सहन आदि। परन्तु यदि कोई रिवाल्वर से ठायँ देना निर्जीव कर दे तो यह कहना मिथ्या हो होगा कि इस क्षण इसके निश्चित श्वास पूरे हो चुके। क्या यदि वह ऐसे न मारा जाता तो भी उसी क्षण दूसरे उपायों से मार ही दिया जाता। नहीं। यहाँ गाय और कसाई वाली बात को पाठक ध्यान में लाने से न भूले।

प्र०-६४ क्या अकाल मृत्यु भी होती है ?

उत्तर– संसार में ऐसी कोई घटना नहीं जो काल की अपेक्षा न रखती हो। इस दृष्टि से तो कोई भी मृत्यु अकाल नहीं होती।

अतः साधारणतया अकाल मृत्यु का अर्थ यही लिया जाता है कि जो समयानुकूल न हो। जैसे मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गयी है "शतायुर्वे पुरुषः। अब कोई व्यक्ति अपनी इस आयु को भोग के मरता है तो उस मृत्यु को यथा समय होने से काल मृत्यु कहा जाता है। और कोई हतभाग्य बाल्यावस्था अथवा युवाकाल में मृत्यु का ग्रास हो जाता है तो किसी न किसी समय में उसकी मृत्थु घटित होने पर भी यह लोक भाषा में असामयिक अथवा अकाल मृत्यु के नाम से पुकारी जाती है। और अनेक बार ऐसा देखा भी जाता है– जिससे बचने के लिए ही धर्मशास्त्र मनुस्मृति ने एक संकेत इन शब्दों में दिया कि–

"अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आतास्यादन्नदोषाच्च मृत्यु विप्रा ञ्जिघासति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—६५ क्या मृत्यु एवं जन्म पाप के कारण होते हैं ?
उत्तर—जन्म और मृत्यु के कारण कर्म तो हो सकते हैं पर यह नहीं कि केवल पाप कर्म ही हों, या केवल पुण्य कर्म। क्योंकि यदि पाप मृत्यु के कारण हों और पुण्य न हों तो मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं क्योंकि बिना मृत्यु को प्राप्त हुए और शरीर त्यागे तो मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। निश्चय ही मोक्ष प्राप्ति हेतु मृत्यु का कारण पाप नहीं हो सकते इसी प्रकार यदि केवल पुण्य ही मृत्यु का कारण हो तो कोई भी पापी मृत्यु को प्राप्त हो नीच योनि में नहीं जा सकता।

इसी प्रकार जन्म का कारण भी न केवल पाप ही हो सकता है और न केवल पुण्य ही। महर्षि दयानन्द पुर्नजन्म सम्बन्धी बरेली शास्त्रार्थ में स्पष्ट लिखते हैं:—"पुर्नजन्म दण्ड और पुरस्कार दोनों के लिए है।"

प्र०—६६ योनियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?
उत्तर · योनियाँ तीन प्रकार की हैं।
(१) कर्म योनि (२) उभय योनि (३) भोग योनि

प्रथम दो योनि मनुष्य की ही योनियाँ है। उनमें देव, विद्वान, योगी जन कर्म योनि में आते हैं वे ऐसे कर्म करते हैं जो बन्धन का कारण न हों।

(२) उभय योनि—इसमें मनुष्य पिछले कर्मों का फल भोगता हुआ आगे को अच्छे बुरे नवीन कर्म करता है।

(३) भोग योनि—जिसमें कि जीव केवल पूर्व कर्मों का फल ही भोगता है नवीन कर्म सम्पादित नहीं करता। पशु, पक्षी, कीट पतंग, वृक्ष आदि सब भोग योनियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—६७ क्या मनुष्य योनि की भाँति पश्वादि भोग योनि में भी जीव कर्म का कर्त्ता और भोक्ता है ?

उत्तर— नहीं ! पशु आदि योनियाँ भोग योनियाँ है कर्म-योनि नहीं। क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान वेद से वंचित रहने तथा विवेक बुद्धि के न होने से उनमें कर्तव्याकर्तव्य का ठीक ठीक बोध नहीं होता और कर्तव्याकर्तव्य के विवेक से शून्य प्राणी के कार्य या क्रियाएँ वस्तुत: कर्म कहे ही नहीं जा सकते अतएव वे अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकते। यही कारण है कि कभी कभी पशुओं के कार्यों के लिए उनके स्वामियों को दोषी ठहराया जाता है।

पूना प्रवचन में महर्षि दयानन्द का स्पष्ट उल्लेख है कि :- "पाप-पुण्य मनुष्य जन्म में ही केवल होते हैं, पश्वादिकों के जन्म में भोग होता है, नये पाप सम्पादन नहीं होते।"

प्र०—६८ मनुष्य का जीव पशु आदि तथा पशु का जीव मनुष्य आदि योनि में जाता है कि नहीं ?

उत्तर—मनुष्य का जीव दुष्कर्मों के कारण पशु आदि योनि में तथा पशु का जीव पाप फल भोग कर पाप-पुण्य के तुल्य होने से मनुष्य की योनि में आता जाता है। जब निधन होने पर यह शरीर भस्म कर दिया गया तो प्रभु कर्मानुसार ऊपर चढ़ा भी सकता है और नीचे गिरा भी सकता है।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास में इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों में देते हैं :—"हाँ! जाता आता है, क्यों कि जब पाप बढ़ जाता है और पुण्य न्यून होता है, तब मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जीव पश्वादि, नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है, तब देव, अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता है और जब पुण्य और पाप बराबर होते हैं तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है।"

प्र०-६९ जीव विभिन्न शरीर क्यों धारण करता है ?

उत्तर - जीव को ईश्वर की व्यवस्था से कर्म फल भोगने के लिए विभिन्न शरीर धारण करने पड़ते हैं। योनि परिवर्तन का आधार कर्म ही होता है। पुनर्जन्म अथवा आवागमन प्राणियों के सुधार के लिए होता है। श्री पं० यशःपाल सिद्धान्तालंकार "वैदिक सिद्धान्त" में लिखते हैं:–पुनर्जन्म द्वारा अपराधी का सुधार इस प्रकार होता है कि विवश परन्तु कर्मों के अनुसार सुधार के विचार से, उन्नति के पद से च्युत करके, एक स्मरण न रहने वाली योनि में डाल दिया जाता है और वहाँ उसे उस पदार्थ से वंचित रखा जाता है जिससे कि वह पहले बिगड़ा था। एक योनि अथवा कई योनियाँ भोग चुकने के पश्चात जब वह पुनः मनुष्य योनि में जाता है तो उसे उन पूर्व व्यतीत योनि का स्मरण नहीं रहता और जिस स्थान से उसका पतन प्रारम्भ हुआ था, उसी पर स्थिर किया जाता है जिससे वह अपना फिर सुधार करे। इससे अधिक उत्तम साधन न्यायकारी परमात्मा की ओर से और क्या हो सकता है ?" यहाँ पाठक विचारें कि पुराने कुप्रभावों के समाप्त हो जाने से भी अब वह स्वाभावतः उधर को प्रवृत क्यों होगा ?

इसी प्रकार महात्मा नारायण स्वामी जी अपनी सुप्रसिद्ध रचना "मृत्यु और परलोक" में लिखते हैं:—"मनुष्य का पाप यही है कि वह अपनी इन्द्रियों को पाप कर्म करने का अभ्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर स्वमेव उनके बन्धन में फँस जाता है। तब दयालु न्यायाधीश अपनी दया पूर्ण न्याय व्यवस्था से उसे ऐसी किसी योनि में भेज देता है, जहाँ उसकी वही इन्द्रिय छिन जाती है कल्पना करो कि एक मनुष्य ने आँखों को पापमय बना लिया है, तो वह किन्हीं ऐसी योनियों में भेज दिया जायेगा, जो चक्षुहीन हैं। करने से करने का और न करने से न करने का अभ्यास हुआ करता है इसलिए आंखों के गोलकों के न रहने से आंखों का काम बन्द हो गया और काम बन्द हो जाने से आंखों का बुरा और पाप करने का अभ्यास छूट जावेगा। ज्यों ही यह अभ्यास छूट जाता है, त्यों ही वह फिर मनुष्य योनि में लौटा दिया जाता है, जहां अब आंखों के बन्धन से स्वतन्त्र है (यहाँ उसे आंखें देने के साथ "भद्रं पश्येम अक्षभिः" का सुझाव भी तो दे दिया गया है तो फिर इसी प्रकार आवागमन के के द्वारा प्राणियों का सुधार हुआ करता है। जब कोई अधम प्राणी सम्पूर्ण इन्द्रियों से पाप करके उन्हें पापमय बना लेता है, तब वह स्थावर योनियों में भेज दिया जाता है जो इन्द्रिय रहित योनियाँ हैं उनमें जाने से समस्त इन्द्रियों का उपर्युक्त भांति सुधार हो जाया करता है।"

इस प्रकार कर्म फल भोग चुकने के पश्चात् पाप-पुण्य के तुल्य होने से आगे कर्म करने का अवसर आवागमन द्वारा ही प्राप्त होता है।

प्र०-पशु आदि विभिन्न योनि का जीव मनुष्य की योनि में कैसे जाता है? जब कि भोग योनि में इसने कोई कर्म नहीं किये होते?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—यह ठीक है कि भोग योनि में आकर उस जीव ने कोई नवीन कर्म नहीं किये, जिसके लिए उसे मनुष्य योनि मिले। पर देखना यह है कि वह भोग योनि में आया ही कैसे ? स्पष्ट हैं कि आनुपातिक दृष्टि से अधिक निकृष्ट कर्मों का फल भोगने के लिए ही वह जीव भोग योनि में भेजा गया है। जब उन कर्मों का फल भोंग चुकेगा एवं पाप-पुण्य तुल्य हो जायेगे तो जिस मनुष्य योनि से उसे धकेला गया था उसी मनुष्य की योनि में भेज दिया जाना अनिवार्य हो जायेगा। जैसे कुकर्म विशेष करने से जेल भेज दिया जाता है एवं फल भोग चुकने पर छोड़ भी दिया जाता है। जेल से छूटने के लिए नवीन कर्म अपेक्षित नहीं होते। वहां तो दण्ड भोगने के लिए भेजा जाता है, जिसे भोग चुकने पर छूटना निश्चित तथा अनिवार्य है। वैसा ही भोग योनि के लिए भी समझ लेना चाहिए।

महर्षि सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास में स्पष्ट लिखते हैं:– "जब अधिक पाप का फल भोग पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप-पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता है।" पं० लेखराम आर्य मुसाफिर कुलियात आर्य मुसाफिर, 'पुनर्जन्म प्रमाण" पृष्ठ ३७९ पर इस सम्बन्ध में लिखते हैं:—'क्योंकि पशु भोग योनि हैं, और वे भले या बुरे कर्म नहीं कर सकते। जिस प्रकार जेलखाने के कैदी, कैद की अवधि पूरी होने पर जेल से छोड़ दिये जाते हैं, न कि किसी शुभ कर्म करने से। इसी प्रकार दण्ड की अवधि पूरी होने पर पशुओं के शरीर में रहने वाले आत्माओं को भी छुटकारा मिल जाता है। और फिर वह मनुष्य जीवन के जिस स्तर से पतित हुआ था, फ़िर उसी स्तर के मनुष्य शरीर में पैदा किया जाता है। ऐसा होने का कारण पशु जीवन के शुभ कर्म नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-७१ एक जन्म का कारण एक कर्म होता है या अनेक?

उत्तर एक जन्म का कारण एक कर्म नहीं हो सकता। कारण कि एक ही जन्म में मनुष्य असंख्य कर्म कर लेता है। एक एक कर्म के लिए एक एक जन्म मिलने लगे तो एक ही जन्म के कर्मों को भोगने के लिए असंख्य जन्मों का होना मानना पड़ेगा। उस स्थिति में कर्म स्वतन्त्रता नाम मात्र को रह जायेगी। अतः यह बात कि एक जन्म का कारण एक कर्म होता है न्याय संगत न होने से मानने योग्य नहीं। बहुत से कर्म मिलकर एक कर्माशय का रूप धारण करते हैं एवं वह कर्म समूह ही जन्म का कारण होता है। एक कर्माशय एक ही जन्म का कारण बनता हो सदा ऐसा भी नहीं होता। भोग योनि के जीवों का पुनः भोग योनि में जन्म लेना पूर्व कर्माशय के अथवा कर्म समूह के कारण ही है। कभी कभी तो मनुष्य योनि में उत्पन्न कोई बालक बिना कोई नवीन कर्म किये जन्म लेते ही या मास दो मास में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वह बालक अपने इस जीवन में कोई नवीन कर्म तो कर ही नहीं पाता फिर उसका दूसरा जन्म उसी शेष पूर्व कर्माशय के कारण ही होता है।

प्र०-७२ क्या मनुष्य जन्म केवल एक बार मिलता है ?

उत्तर—साधारणतया यही धारणा प्रचलित है कि मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलता और इसे अति दुर्लभ तथा अप्राप्य माना जाता है। एक बार मनुष्य योनि से पतित होने पर चौरासी लाख योनियों का चक्कर पूरा करके ही जीव मनुष्य का शरीर धारण करता है। यद्यपि यह धारणा बद्ध मूल हो चुकी है तथापि यह वास्तविकता से कोसों दूर है। प्रथम तो चौरासी लाख योनियों की कल्पना भी प्रमाणित नहीं है। और दूसरे मनुष्य जन्म की प्राप्ति भी पाप-पुण्य के सम होने पर हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है और पाप-पुण्य केवल मनुष्य जन्म में ही सम्पादित होते हैं तो मनुष्य जन्म का बार बार न होना मानने में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। महर्षि दयानन्द "पूना प्रवचन" (छटा प्रवचन) में इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों मे देते हैं: -
"कोई कोई शंका करते है कि मनुष्य जन्म एक ही समय मिलता अथवा अनेक बार ? तो इसका उत्तर यह हैं कि मनुष्य जन्म बारम्बार प्राप्त होता है।......पाप की अपेक्षा पुण्य अधिक हो अथवा पुण्य की अपेक्षा पाप अधिक हो तो इन्हें भोगकर जब ही पाप पुण्य सम हुआ कि मानों मनुष्य जन्म प्राप्त होता है।" यदि मनुष्य जन्म एक ही बार हो तो उस बार का गिरा हुआ जीव फिर कभी उठ ही नहीं सकता। इस प्रश्न में हमेशा की बहिश्त और हमेशा की दोजख की बू है

प्र०-७३ पाप पुण्य किसे कहते हैं ?
उत्तर—महर्षि दयानन्द ने "आर्योद्देश्यरत्नमाला में पाप-पुण्य की निम्न परिभाषा दी हैं -

पुण्य जिसका स्वरूप विद्या आदि शुभ गुणों का दान और सत्य भाषण आदि सत्याचार का करना है उसको पुण्य कहते हैं। पाप—जो पुण्य से उल्टा और मिथ्या भाषण आदि करना है उसको पाप कहते हैं।"

प्र०-७४ पाप वासना क्यों उत्पन्न होती हैं ?
उत्तर कर्तृत्व जीव का स्वाभाविक गुण है। परन्तु कर्म के लिए ज्ञान की आवश्यकता हुआ करती है। जीव स्वभाव से राग द्वेष वाला एवं अल्पज्ञ है। इन्हीं राग द्वेष एवं मिथ्या ज्ञानादि दोषों के कारण मनुष्य पाप कर्म की ओर प्रवृत हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रत्येक कर्म किये जा चुकने के पश्चात् स्मृति स्वरूप अथवा सस्कार का प्रभाव रूप अपना अभ्यासाँश छोड़ जाता है जिसे वासना कहा जाता है। चित्त में विद्यमान यही वासनायें पाप की ओर प्रवृत करती रहती हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती पाप वासना को स्वतन्त्रता का विकार मानते हैं। जैसा कि पूना प्रवचन छटे प्रवचन के निम्न उद्धरण से प्रतीत होता है — "अब कोई कोई ऐसी भी शंका करे कि मनुष्य को पाप वासना ही क्यों हुई ? तो उसका इतना ही समाधान है कि परमात्मा ने मनुष्यों को स्वतन्त्रता दी है और उस स्वतन्त्रता के जो जो परिणाम होवेंगे, उन्हें भी स्वीकार करना चाहिए। सुख के सब सामान होने पर भी यदि स्वतन्त्रता नहीं तो वह स्थिति दुःख मिश्रित स्वतन्त्रता होकर अति दुःसह होती है। तब पाप वासना होती है यह अपनी स्वतन्त्रता का विकार है इसके लिये ईश्वर पर दोष नहीं लगा सकते।"

प्र० ७५ पाप वासना की निवृति में प्रायश्चित्त का क्या महत्त्व है ?

उत्तर— यह तो निश्चित ही है कि प्रायश्चित द्वारा भी पाप फल भोग से छुटकारा नहीं हो सकता। और जब प्रायश्चित द्वारा भी पाप भोग से छुटकारा नहीं तो प्रायश्चित का महत्त्व ही क्या रह जाता है। ऐसा नहीं, फिर भी प्रायश्चित का महत्व है ही। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "पूना प्रवचन" (छटे प्रवचन में) इस विषय को स्पष्ट किया है वर्णन इस प्रकार है"–अब कोई शंका निकाले कि पूर्व कृत पापों का दण्ड जीव को बिना भोगे छुटकारा नहीं मिल सकता यह हमारा मत है, तो फिर पश्चाताप का कुछ भी उपयोग नहीं है क्या ? उसका उत्तर यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पश्चाताप से पाप-क्षय नहीं होता, परन्तु आगे पाप करना बन्द हो जाता है।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात् पापात् प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः॥

चाहे कितना भी पश्चाताप किया जावे तो भी कृत पापों को तो भोगना ही होगा। इसका दृष्टान्त—जैसे कोई कुये में गिरा और उसके हाथ-पाँव टूट गए, तो अब चाहे जितना पश्चाताप करे, तो भी उसके हाथ-पांव जो टूटे सो तो टूट ही चुके वह तो कुछ भी किये, नहीं छूट सकता। हां, आगे के लिए कुयें में न गिरेगा, इतना ही केवल होगा।"

प्रायश्चित एक महत्वपूर्ण वैदिक क्रिया है। यह वैसी तोबा तो नहीं कि

रात को पी सुबह को तोबा कर ली।
रिन्द के रिन्द रहे हाथ से जन्नत न गयी।

इसमें तो किये पर पछतावा और आगे को वैसा न करने का व्रत लेना होता है। True repentance has a double aspect, it looks upon the past with a weeping eye and upon the future with a watchful eye.

अर्थात् सच्चे प्रायश्चित के दो पहलू होते हैं, यह अपने भूतकाल पर दुःख भरी दृष्टि से और भविष्यत् काल पर सावधानी की दृष्टि से देखता है। तात्पर्य यह कि प्रायश्चित द्वारा जहाँ अपने किये कर्मों के प्रति दुःख एवं पछतावे के भाव उत्पन्न होते हैं वहाँ भविष्य के लिए वैसा कर्म न करने के लिए सकल्प लेना होता है कि जिस कर्म के लिए अब पछतावा किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक कर्म एक वासना उत्पन्न करता है जो पुनः वैसा कर्म करने को प्रेरित किया करती है। प्रायश्चित इस वासना पर चोट करता है जिससे वह वासना मर जाती है और मनुष्य वैसा कर्म करने से बच जाता है। इस प्रकार प्रायश्चित भविष्य में होने वाले पापों की निवृत्ति में प्रबल सहायक होता है। फिर प्रायश्चित भी तो अन्ततः एक कर्म ही हैं। जब अन्य सब कर्मों का फल मिलता है तो प्रायश्चित रुपी सुकर्म का सुफल क्यों नहीं मिलेगा ?

प्रायश्चित का महत्व बतलाते हुए महात्मा प्रभु आश्रित जी "कर्म भोग चक्र" पृष्ठ ३३ पर लिखते हैं:—"प्रायश्चित स्वयम् एक कर्म होने के कारण पहले किये हुये कर्मों का विरोध करके उनके फल को नष्ट कर सकता, है किन्तु यह तभी होगा जब कर्म 'अनियत विपाक' हो। कारण "नियत विपाक" कर्म का फल प्रायश्चित द्वारा शिथिल हो सकता है सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता।" इससे मिलते जुलते विचार प० नन्द किशोर विद्यालंकार ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'पुनर्जन्म' पृष्ठ ६४ पर प्रकट किये हैं:—"प्रार्थना प्रायश्चितादि विरुद्ध कर्मों से पूर्व "नियत-विपाक" कर्म कुछ शिथिल पड़ सकते हैं किन्तु फल अवश्य देते हैं। "अनियत-विपाक" कर्म प्रायश्चित प्रार्थनादि के द्वारा सर्वथा नष्ट भी हो सकते हैं।"

प्राथना प्रायश्चितादि द्वारा विरुद्ध कर्मों से पूर्व कर्मों का फल नष्ट अथवा शिथिल होता है कि नहीं, यहाँ इस विषय पर विचार न कर हम प्रायश्चित की उपयोगिता पर विचार करना उपयुक्त समझते हैं। क्योंकि हमारा विश्वास है कि चाहे कितना ही प्रायश्चित अथवा पश्चाताप क्यों न किया जाय पाप का फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य भोगना पड़ेगा। कुपथ्य कर लेने के पश्चात उपवास तथा औषध आदि के सेवन से हम उस कुपथ्य के परिणाम की भयकरता को कम करने में एवं कुपथ्य-जन्य कुप्रभावों से बचने में भले ही सफल हो जायें, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कुपथ्य का हम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। यदि कुपथ्य का प्रभाव नहीं हुआ, ऐसा माना जायेगा तो उपवास एवम् औषध सेवन का क्या प्रभाव रहा ? स्पष्ट है कि कुपथ्य के प्रभावों को उपवास औषध सेवनादि नवीन कर्मों का प्रतिरोध सहन करना पड़ा है।

महात्मा नारायण स्वामी ने 'कर्म रहस्य' ग्याहवें अध्याय में प्रायश्चित के महत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है: — 'प्रायश्चित से कर्म फल से न बच सकने पर भी प्रायश्चित की उपयोगिता है। उसकी उपयोगिता को हम थोड़े शब्दों में उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं। यह कहा जा चुका है कि मनुष्य जब कोई कर्म करता है, तो उससे उसका फल मिलने के सिवा एक वासना बना करती है। चित्त में ये वासनायें लाल, पीली, नीली आदि अनेक रंगों की रेखाओं के रूप में रहा करती हैं। इसका एक काम यह भी होता है कि जिस कर्म की जो वासना होती है उसी के करने की यह भीतर से ही प्रेरणा करती है। प्रायश्चित की उपयोगिता यह है कि उससे वासना का यह प्रेरक अङ्ग नष्ट हो जाता है और प्रायश्चित करने के बाद उस दुष्कर्म के करने की, जिसका प्रायश्चित किया गया है प्रेरणा करने वाली कोई वस्तु अन्तः करणों में बाकी नहीं रहती। यह थोड़ी बात नहीं है। इसलिए प्रायश्चित को उन्नत जीवन बनाने का एक मुख्य साधन समझना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र-७६ रुग्ण होने पर औषध सेवन से क्या लाभ जबकि रोग कर्म फल स्वरुप होते हैं एवं कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है ?

उत्तर—रोग केवल कर्मों के फल (विपाक) से ही नहीं होते कर्मों के प्रभाव स्वरूप भी होते हैं। औषध तथा पथ्य सेवन नवीन कर्म हैं। जिनका प्रभाव पड़ा करता है चाहे वह उसके परिणाम स्वरूप हो अथवा नवीन प्रारब्ध के रूप में जो कि शीघ्र फल देने वाला होता है। पं० यश: पाल सिद्धत्तालंकार "वैदिक सिद्धाँत" में लिखते है : जिस प्रकार असंयम अथवा कुपथ्य से रोग अवश्य होता है, उसी प्रकार औषध सेवन से उस रोग की निवृत्ति होती है। असंयम बुरा कर्म है। ईश्वर उसका फल दु:ख देता है। इसी प्रकार औषधियों में ईश्वर ने अपनी दयालुता से रोग निवारण का प्रभाव उत्पन्न किया है और वेद में उसके सेवन की आज्ञा है। अत: ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार औषधि सेवन शुभ कर्म है। इसका फल सुख होता है। यदि असंयम से रहना कर्म है तो औषधि सेवन भी तो कर्म है। प्रत्येक कर्म का फल अवश्य मिलता है।

स्पष्ट है जब प्रत्येक कर्म का फल अनिवार्य है तो औषध सेवन रूपी कर्म का फल क्यों नहीं मिलेगा ? और वह रोग से प्राप्त कष्ट पा चुकने के बाद ही मिले—यह कब आवश्यक है अत: औषधिवत् प्रार्थना या प्रायश्चित्तादि कर्म, तत्कर्मफल दण्ड मिलने से पूर्व ही कर डालने उचित हैं। जैसे औषध सेवन के अभाव में वही रोग अधिक दु:खद होगा—वैसे प्रार्थनादि से प्राप्तव्य सबलतादि के अभाव में वही कुकर्म अधिक दु:खद होगा। यहाँ दु:ख सुख की अनुभूति में अनुभविता के मनोबल की हीनता या अधिकता भी औषधिवत् बहुत कुछ काम करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—७७ क्या कृत कर्मों का फल नवीन कर्मों से कट जाता है ?

उत्तर – कर्मफल मीमांसा का यह एक अत्यन्त गम्भीर तथा महत्व पूर्ण प्रश्न है। हम एक दम यह नहीं कह सकते कि कृत कर्मों का फल नवीन कर्मों से कट जाता है और उन कर्मों को फल भोग से मनुष्य बच जाता है क्योंकि कर्म फल का यह सिद्धान्त है कि "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" अर्थात् बिना भोगे कर्म से छुटकारा नहीं। अतः यह सोचना कि नवीन कर्म के बदले में कृत कर्मों का फल न मिलकर कट जायेगा युक्तियुक्त नहीं। कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है यह एक सत्य सिद्धान्त है। साथ ही यह भी सत्य ही है कि पुरुषार्थ प्रारब्ध से प्रबल है। यदि हमारे पुरूषार्थ का अपने प्रारब्ध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो पुरुषार्थ का प्रबल होना निरर्थक हो जायेगा। अतएव हम यह भी नहीं कह सकते कि पुरुषार्थ रूपी नवीन कर्मों से भाग्य रूपी कृत कर्मों का फल नहीं कट सकता। फिरभी यदि इस प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में देना हो तो हम यही कहेंगे कि:—कटता भी है और नहीं भी कटता।" व्याख्या द्वारा यह समझाने का प्रयत्न करेंगे कि कृत कर्मों का फल कटता किस प्रकार से है और किस प्रकार से नहीं कटता।

कटता कैसे है–

कृत कर्मों का फल नवीन कर्मों से कैसे कटता है इसे समझने के लिए हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं –

किसी बालक की टांग की हड्डी जन्म से ही टेढ़ी हो और वह बालक लँगड़ा कर चलता हो तो उसका कारण पिछले जन्म के कर्म ही माने जा सकते हैं क्योंकि इस जन्म में तो बालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कोई भी ऐसा कर्म नहीं किया होता कि जिसके कारण उसे लँगड़ा होना पड़े। अब यदि कोई सुयोग्य डाक्टर बालक की टाँग आपरेशन अथवा पलास्तर द्वारा उपचार कर सीधी करता है और उस बालक की टाँग ठीक हो जाती है और लँगड़ापन जाता रहता है तो बालक के पूर्व कर्म का फल चिकित्सा या उपचार रूपी नवीन कर्म से कट गया ऐसा माना जायेगा। कर्म फल का यह सिद्धान्त है और जैसा कि योग-दर्शनकार मानता है कि तीव्र संवेग से किये गये नवीन कर्मों का शीघ्र विपाक हो जाता है और वे शीघ्र फलोन्मुख हो जाते हैं।

प० नन्द किशोर विद्यालंकार अपनी पुस्तक 'पुनर्जन्म' के 'कर्म व्यवस्था प्रकरण में इस विषय को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं:—"अत्यन्त विरुद्ध कर्म एक दम ही फल नहीं देते। शास्त्रकारों का यह सिद्धान्त है कि कुछ एक कर्म चुन लिये जाते हैं जिनका फल हमें एक जन्म में मिलता है। उनके चुनाव की व्यवस्था इस प्रकार है कि जो कर्म प्रबल होते हैं फल देने में उनका पर्याय भी प्रथम रहता है और अन्य कर्म उनके पीछे फल देते हैं। यदि इस बीच में हम कोई ऐसा कर्म कर दें जो कि उतना ही प्रबल हो तो उसका भी कर्म प्रवाह (धारा) के बीच में ही मिल जायेगा जिस प्रकार सिपाहियों की एक पंक्ति जा रही हो तो अन्य सिपाही जो बाहर से आकर उसमें मिलेंगे वह अपने बल (Rank) के अनुसार ही अन्य को हटा हटा कर बीच में अपना स्थान बना लेंगे। इस प्रकार इस व्यवस्था को समझना चाहिए। विरोधी नवीन कर्म और पुराने, दोनों कर्मो की व्यवस्था कैसे होगी? फल की व्यवस्था इस प्रकार है क्रियमाण तथा प्रारब्ध कर्मों को मिलाकर तदनुसार फल मिलता है।"

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान पं० रघुनन्दन शर्मा लिखते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कर्मों का नाश विना कर्म फलों के भोगे नहीं हो सकता यह ठोक है, पर हम यह अवश्य देखते कि कर्म फलों का भोग मुलतवी हो सकता है। क्योंकि कर्म फलों के भोगों का सिद्धान्त कर्मों की लघुता-गुरुता पर अवलम्बित है जो कर्म गुरु होते हैं, इनका फल पहले मिलता है। जिस प्रकार पानी में डाला हुआ एक छोटा कंकड़ छोटी सी लहर उत्पन्न करता है, परन्तु उसके बाद का डाला हुआ बड़ा कंकड़ उस छोटी लहर को मिटाकर बड़ी लहर उत्पन्न कर देता है, उसी तरह छोटे कर्म फल बड़े कर्म फलों के आगे दब जाते हैं।"

हम देखते हैं कि न्यायालय में कभी कभी अपराधियों को कई एक अपराधो का दण्ड एक साथ (Simultaniously) मिल जाता है। ठीक ऐसे ही अनेक कर्मों का फल भी कभी कभी एक साथ मिला करता है। उनमें कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल सुख तथा कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल दुःख होता है। हम अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन ऐसा देखते हैं कि अनेक सुख दुःख साथ साथ भोगे जाते हैं। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध कर्मों का एक साथ फल देने से जहाँ उन कर्मों का फल भोगने में अवश्यंभाविता पायी जाती है वहां परस्पर विरुद्ध फल भोग उनके परिणामों अथवा प्रभावों को क्षीण भी कर देता है। सुख दुःख के साथ साथ मिलने से दोनों का प्रभाव कम हो जाता है इस प्रकार लोक व्यवहार में भी कर्म फल कटता हुआ सा प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के दो सौ रुपये खो जाते हैं जिसका उसे दुःख होना स्वभाविक ही है परन्तु थोड़ी ही देर में उसे व्यापार में एक हजार रुपये के लाभ का समाचार प्राप्त हो जाता है जिसे सुन दो सौ रुपये खोने का दुःख वह भूल जाता है। यहाँ दोनों कर्मों का फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग अलग मिलने पर भी परस्पर कट गया सा ही माना जाता है। हाँलाकि गणित की दृष्टि से उसे १०००–२००=८००) का ही लाभ हुआ, परन्तु पहले पीछे का भी बड़ा प्रभाव है और हजार मिलाकर २०० जाते रहें तो उस पर कुछ दूसरा ही रग दीखता है जबकि गणित की दृष्टि से ८००) की ही बात है फिर किस्तों में भुगतान भी कुल हो जाता है और सह्यता भी रहती है ऐसा भी देखा ही जाता है।

कर्मफल किस प्रकार कटता है —

कुछ लोग कर्म फल का कटना निम्न रीति से मानते हैं जो कि ठीक नहीं। जैसे एक व्यक्ति ने १२०० शुभ कर्म किये और १००० पाप कर्म। गणित के सिद्धान्तानूसार १२०० शुभ कर्मों में से १००० पाप कर्मों का फल घटाकर शेष २०० शुभ कर्मों का फल मिले। तात्पर्य यह कि १००० शुभ कर्मों का फल १००० पाप कर्मों के बदले कट जाये। न १००० शुभ कर्मों का फल मिले न १००० पाप कर्मों का। इस प्रकार कर्म फल का कटना अव्यवाहारिक एवं असम्भव है। कारण कि इस रीति से कर्म फल कट जाने से कोई भी जीव मनुष्य योनि में जन्म नहीं ले सकता। कारण कि जब पाप अधिक होते हैं तो जीव पशु आदि योनियों में जाता है। और जब पुण्य अधिक होते हैं तो जीव देव आदि उत्तम योनियों को प्राप्त होता है (जैसा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की मान्यता है)। मनुष्य योनि तो पाप-पुण्य के तुल्य होने से ही प्राप्त होती है। परन्तु जब पाप और पुण्य के तुल्य होने पर परस्पर कट जाना माना जायेगा तो मनुष्य योनि की प्राप्ति का आधार ही क्या रह जायेगा अतः कर्म फल का इस प्रकार से कटना नहीं माना जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न का उपसंहार करते हुए हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि पथ्य या उपचार से दुख के कट जाने से भी हम यह नहीं कह सकते कि कर्म का फल नहीं मिला। यह दूसरी बात है कि पथ्य एवं उपचार से उसकी भयंकरता कम हो गई, परन्तु यह नहीं कि उसका कुछ प्रभाव ही न हुआ हो। जुर्माने को इनाम से कटवा देने पर क्या यह माना जायेगा कि जुर्माना नहीं अदा किया गया अथवा इनाम नहीं दिया गया ?

प्र०-७८ निष्काम कर्म से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—फल की कामना न करते हुये, कर्त्तव्य भावना से जो कम किये जाते हैं, उन्हें निष्काम कर्म कहते हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा नारायण स्वामी जी "मृत्यु और परलोक" में इसकी व्याख्या निम्न शब्दों में करते हुये लिखते हैं, "फल की इच्छा उत्पन्न न करके जो कर्म किये जाते हैं, अर्थात् जो कर्म केवल धर्म (कर्त्तव्य-Duty) समझकर किये जाते हैं, उनको निष्काम कर्म कहते हैं।" निष्काम कर्म वासना उत्पन्न नहीं करते जिससे मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होता।

प्र०-७९ क्या निष्काम कर्मों का फल नहीं मिलता ?

उत्तर—निष्काम कर्म का फल नहीं मिलता ऐसी बात नहीं मानी जा सकती। फल तो प्रत्येक कर्म का अवश्य ही मिलता है चाहे वह कर्म सकाम हो अथवा निष्काम। फल की इच्छा न करने मात्र से फल न मिले ऐसी बात नहीं। अतः सकाम कर्मों की ही भाँति निष्काम कर्म का भी फल मिलता है। उदाहरण से निष्काम कर्म का महत्व पाठक हृदयङ्गम करें। अलग अलग दो पिताओं ने अपने अपने पुत्र को निष्कामता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सकामता से ४०००), ४०००) व्यय करके शिक्षा दी। परन्तु दोनों ही पुत्रों ने अपने अपने पिता की सेवा न की, तो उस स्थिति में वह पिता जिसने निष्कामता से अपना कर्त्तव्य समझकर पुत्र का शिक्षा देने में ४०००) व्यय किये यह मानकर दुःखी न होगा कि मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया, वह (पुत्र) स्वकर्त्तव्य पालन न करे तो वह जाने। परन्तु सकामता से ४०००) रुपये व्यय करने वाला पिता पछताता है कि मैंने व्यर्थ ही सुख की आशा में यह ४०००) फूँके, इससे तो किसी अन्य व्यवसाय में लगा कर मैं आज मौज उड़ाता। इस प्रकार निष्काम कर्म शान्ति का जनक होता है और सुकर्म का का सुफल तो मिलना ही है।

प्र० ८० जब निष्काम कर्म का फल भी मिलता है एवं सकाम का भी, तो निष्काम कर्म श्रेष्ठ क्यों माने जाते हैं ?

उत्तर—निष्काम कर्म श्रेष्ठ इसलिए है कि इसके करने में फल में आसक्ति न होने के कारण, ऐसे कर्म वासना को उत्पन्न नहीं करते और इस प्रकार "न कर्म लिप्यते नरे" के अनुसार ऐसे कम बन्धन के कारण नहीं बनते।

प्र०-८१ सकाम तथा निष्काम कर्म में क्या भेद है ?

उत्तर—जिन कर्मों के फल में हमारी आसक्ति होती है वे सकाम कम तथा जिन कर्मों के फल के प्रति हमारी आसक्ति नहीं होती वे निष्काम कर्म कहलाते हैं।

इस सम्बन्ध में प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार अपने गीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य में लिखते हैं:–'सकाम कर्म तथा निष्काम कर्म में भेद-सकाम-व्यक्ति की दृष्टि सदा फल की तरफ होती है, निष्काम-व्यक्ति की दृष्टि सदा कर्म की तरफ रहती है। असली वस्तु तो कर्म है। कर्म जितनी तन्मयता से किया जायगा उतना ही तो फल भरपूर होगा। क्योंकि सकाम-व्यक्ति की दृष्टि दो बातों पर रहती है इसलिए उसमें कर्म के प्रति उतनी तन्मयता नहीं रह सकती जितनी निष्काम-व्यक्ति की रह सकती है क्योंकि उसके ध्यान का केन्द्र तो सिर्फ कर्म होता है। सकाम-निष्काम में दूसरा भेद यह है कि सकाम - व्यक्ति सदा स्वार्थ की दृष्टि से देखता है, 'उसकी कामना'–यह मनोभाव उसमें सदा प्रधान रहता है, इसीलिये स्वार्थ-दृष्टि में दूसरे का अहित भी हो सकता है। निष्काम-व्यक्ति कभी स्वार्थ दृष्टि से नहीं देखता क्योंकि उसकी फल में आसक्ति ही नहीं होती, इसलिए उसके कर्म से दूसरे का अहित नहीं होता। सकाम-निष्काम में तीसरा भेद यह है कि सकाम-व्यक्ति फलासक्त होता है इसलिए फल न मिलने पर वह दुःखी होता है निष्काम व्यक्ति क्योंकि फलासक्त नहीं होता इसलिए सिद्ध-असिद्धि में वह सम रहता है, फल मिलने पर वह आपे से बाहर नहीं हो जाता, फल न मिलने पर सिर नहीं पीटने लगता।''

प्र०-८२ कर्म-सन्यास से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– कर्म-सन्यास से तात्पर्य कर्म-त्याग से नहीं क्योंकि कर्मों का त्याग हो ही नहीं सकता। कारण कि मनुष्य बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकता। तो फिर क्या कर्म-सन्यास का तात्पर्य कर्म फल त्याग से है ? ऐसी भी नहीं। कर्म का फल भी हम नहीं त्याग सकते क्योंकि कर्म-फल भोग में हम स्वतन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पराधीन हैं। जिसके भोग में हम विवश हैं बेबस हैं, परतन्त्र हैं उनका त्यागना कैसे हो सकता है ? कर्म-सन्यास का अर्थ तो यह है कि हम कर्म-फल में आसक्त न हों। अर्थात् फल में हमारी लिप्सा न हो, आसक्ति न हो। यही कर्म सन्यास है न कि कर्मों को ही छोड़ देना। पौराणिक बन्धुओं को मान्यवर जय दयाल जी गोयन्दका के 'कर्म योग का तत्व" नामक ग्रन्थ के इस लेख पर अवश्य ध्यान देना चाहिए - 'कितने ही लोग भक्ति का बहाना लेकर कहते हैं कि भक्त को कोई भी कर्म करने की कोई आवश्यता नहीं. भक्ति के प्रभाव से उसके सब कार्य स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं, तथा वे संध्या-गायत्री, यज्ञ दान, तप आदि शास्त्र विहित कर्मों का त्याग कर देते हैं। वे यह नहीं समझते कि भक्ति के बहाने शास्त्र विहित कर्मों का त्याग करने से मनुष्य पतित हो जाता है। "नारद पुराण का हवाला देते हुए गोयन्दका जी आगे लिखते हैं–"जो धूर्त बुद्धिवाला द्विज आपत्तिकाल न होने पर भी सन्ध्योपासन नहीं करता, उसे सब धर्मों से भ्रष्ट एवं पाखंडी समझना चाहिये। जो कपट पूर्ण झूठी युक्ति देने में चतुर होने के कारण संध्या आदि कर्मों को अनावश्यक बताते हुए उनका त्याग कर देता है, उसे महा-पातकियों का सिरमौर समझना चाहिए।"

प्र०-८३ कर्मयोग से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर "योगः कर्मसु कौशलम्" गीता के इस वचनानुसार कर्मों को कुशलता के साथ करने का नाम ही योग अथवा कर्म-योग है। कर्मों को चतुराई से करने का तात्पर्य यह नहीं कि हम किसी का माल चतुराई से हर लें, अपितु यह है कि हम कर्मों को इस चतुराई अथवा कुशलता से करें कि उसमें हम लिप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो। कर्मों में कुशलता तो तभी है जब हमारी उनके फल में आसक्ति न हो। फल पर ध्यान केन्द्रित करने से हमारी उस शक्ति का, जो कर्म पर लगनी चाहिये, अपव्यय होता है और इस प्रकार उस कर्म में वह कुशलता अथवा दक्षता नहीं आ पाती कि जो आनी चाहिये थी। कर्म-योग का अर्थ केवल कर्म करना और फल पाना नहीं, अपितु कर्मों में कुशलता लाना है। कर्म के सम्बन्ध में इस दृष्टि-कोण का उत्पन्न हो जाना ही कर्म-योग है। "कर्म योग का तत्व" के सुयोग्य लेखक श्री जयदयाल जी गायन्दका लिखते हैं—"कर्म योग नाम तभी सफल होता है जब कर्मो का योग परमात्मा के साथ कर दिया जाता है" तात्पर्य यह है कि अपने यज्ञादि शुभ कर्मों को प्रभु के समर्पण कर अहँकार-रहित हो जाना ही कर्म-योग है।

प्र०—८४ कर्म बन्धन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जो कर्म पुनः वैसा ही कर्म करने को बाध्य करे, वही बन्धन है। अर्थात् जब किसी कर्म की वासना वैसा कर्म करने को बाध्य कर देती है उसी को बन्धन कहते हैं। मनुष्य जब कर्म करता है तो वह कर्म एक प्रकार की वासना को उत्पन्न करता है। वह वासना पुनः वैसा कर्म करने को प्ररित किया करती है और इस प्रकार कर्म और वासना का एक चक्र सा चल पड़ता है मनुष्य जब इसे चक्र में फंस जाता है उसी को कर्म बन्धन कहते हैं। इसी बन्धन को काटना मनुष्य का धर्म है, क्योंकि यही कर्म बन्धन हमें जन्म-मरण के चक्कर में डाले हुए है। कर्म बन्धन से तात्पर्य कर्म के फल नहीं कारण कि मनुष्य ऐसे निष्काम कर्म भी कर सकता है कि जो फल तो देते है परन्तु बन्धन का कारण नहीं बनते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-८५ कर्म कब बन्धन का कारण बनते हैं ?

उत्तर– जब हम कोई भी कर्म कर्त्तव्य की भावना से हट कर फल की इच्छा से, अथवा विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर करते हैं तब वही कर्म हमारे लिये बन्धन का कारण बन जाते हैं। ऐसे कर्मों में कर्त्तव्य भावना कम और अधिकार भावना अधिक होती है। जब हमारा ध्यान कर्म की ओर कम और फल की ओर अधिक होगा तो कर्मों में कुशलता कहाँ से आयेगी। ऐसी भावना कर्म-योग की भावना के सर्वथा विपरीत है। और ऐसे वासनोत्पादक कर्म सदैव बन्धन का कारण हुआ करते हैं।

प्र०-८६ क्या मनुष्य कर्म के बन्धन में स्वयं फँसता है ?

उत्तर—जैसे कि पूर्व प्रश्न के उत्तर में बताया जा चुका है कि मनुष्य जब विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर फल के प्रति आसक्ति लिये हुये कर्म करता है तो वे बन्धन का कारण होते हैं। और ऐसे कर्म करने के लिऐ मनुष्य को कोई बाध्य नहीं करता, अपितु वह अपने कर्म-स्वातन्त्र्य से इसे स्वमेव सम्पादित करता है और इस प्रकार कर्म बन्धन में भी स्वयं ही फँसता चला जाता है।

8902

प्र०-८७ कौन से कर्म बन्धन का कारण नहीं बनते ?

उत्तर– जो कर्म यज्ञार्थ अर्थात् यज्ञ की भावना से किया जाता है वह बन्धन का कारण नहीं बनता। क्योंकि उसके पीछे स्वार्थ त्याग कर 'इदन्न मम' की भावना काम करती है।

वस्तुतः यज्ञ है ही निष्काम कर्म का नाम। यज्ञ शब्द का प्रयोग सकाम कर्म के लिए नहीं होता। यज्ञ भावना से किये गये कर्मों में सकामता न होने से वे कर्म बन्धन का कारण नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जीव शाश्वत अर्थात् नित्य हैं और उसके कर्म भी प्रवाह रूप से नित्य है । कर्म और कर्मवान का नित्य सम्बन्ध होता है।

प्र०-९५ मृत्यु के पश्चात् जीव कहाँ जाता है ?

उत्तर – मृत्यु के पश्चात जीव आकाशस्थ वायु में रहता है और फिर पाप-पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती भी ऐसा ही मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास में महर्षि लिखते हैं:—"जब जीव शरीर छोड़ता है तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है, क्योंकि 'यमेन वायुना' वेद में लिखा है कि यम नाम वायु का है, गरुड़ पुराण का कल्पित यम नहीं।..........पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता हैं। वह वायु अन्न जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है, जो प्रविष्ट होकर क्रमश: वीर्य में जा गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है।"

पूना के छटे प्रवचन में महर्षि लिखते हैं: – "इस विषय में कोई कोई कहते हैं कि गरुड़ पुराण में कहे अनुसार मनुष्य का प्राण हरण करने के लिये यमदूत आते हैं। इन यमदूतों के मुख दरवाजे इतने बड़े होते हैं और शरीर पर्वत के सदृश होते है यह वर्णन सर्वथैव अतिशयोक्ति का है। निरुक्त में अन्तरिक्ष काण्ड है उसमें वायु के यमराज धर्मराज यह नाम दिये हैं:—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैव हृदि स्थितिः ।

इसमें जीव यम की ओर जाता है अर्थात् वायु में, वायु से अन्य योनि के बीच उसका प्रवेश होता है, ऐसा समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-९६ पुनर्जन्म होने में क्या प्रमाण है ?

उत्तर—प्राणियों में पायी जाने वाली विषमता पुनर्जन्म का प्रबल प्रमाण है। यह विषमता अकारण नहीं अपितु प्राणियों के अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण हैं। बिना पुनर्जन्म के जीवों का कर्म फल भोगना सम्भव नहीं। योगदर्शन साधन पाद में लिखा है "क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।" अर्थात् कुछ कर्मों का फल दृष्ट अर्थात् इसी जन्म में और कुछ का अदृष्ट अर्थात् अगले जन्म में मिलता है।

मृत्यु का भय जिसे योग - दर्शनकार ने 'अभिनिवेश' की संज्ञा दी है, भी पुनर्जन्म का ठोस प्रमाण है इस सम्बन्ध में महर्षि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखते हैं:—"जो सब प्राणियों को नित्य आशा होती है कि सदैव शरीर के साथ बने रहें, अर्थात् कभी मरे नहीं, सो पूर्व जन्म के अनुभव से होती है। और इससे पूर्व जन्म भी सिद्ध होता है क्योंकि छोटे-छोटे कृमी चीटीं आदि जीवों को भी मरण का भय बरावर बना रहता है।'

यदि कोई कहे कि दूसरे का मरते देख प्राणी भयभीत होते हैं तो हमारा उत्तर होगा कि तुरन्त उत्पन्न हुआ बालक मृत्यु से क्यों डरता है? उस बालक को तो प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण आदि किसी भी साधन से मृत्यु के दुःख की अनुभूति इस जन्म में नहीं हुई फिर भी उसको मृत्यु का भय बना हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह भय उसे पूर्व जन्म के अनुभव स्वरूप है।

बच्चा उत्पन्न होते ही माता के स्तन की कामना करता है एवं स्तन मुख में लेते ही अभ्यासी की भाँति दूध पीने लगता है। यह स्तनपान का अभ्यास उसे इस जत्म में तो अभी तक हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—केवल कर्मों से नहीं, ज्ञान, कर्म उपासना तीनों के सम्यक अनुष्ठान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है न कि केवल कर्मों से। ससार के बन्धनों से छूठकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए महर्षि ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना साधन चतुष्ट्य एवं योगाभ्यास का निर्देश करते हैं। नवम समुल्लास में महर्षि लिखते हैं:–'नाना प्रकार के जन्म मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता।....जब जीव परमेश्वर की आज्ञा पालन, उत्तम कर्म सत्संग, योगाभ्यास पुर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को पाता है।"

प्र०-९२ कर्म अनन्त है या सान्त ?

उत्तर संख्या की दृष्टि से जीवों के लिए असंख्य होते हुए भी ईश्वर के ज्ञान में कर्म सान्त है। जीव के कर्म करने की सामर्थ्य एवं साधन सीमित हैं। सीमित सामर्थ्य तथा सीमित साधनों से किये गये कर्म असीम नहीं हो सकते। सान्त कर्मों के आधार पर ही मुक्ति से पुनरावृत्ति का वैदिक सिद्धान्त महर्षि दयानन्द ने प्रतिपादित किया है क्योंकि सान्त कर्मों का फल अनन्त नहीं हो सकता। यदि कर्म अनन्त होते तो मोक्ष भी अनन्त काल तक होता और पुनरावृति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। महर्षि एकादश समुल्लास में लिखते हैं:–जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम, जींव के गुण कर्म, स्वभाव का फल भी ससीम होना चाहिए।" चतुर्दश समुल्लास में भी स्पष्ट उल्लेख है:—"कोई भी जीव अनन्त पाप करने का सामर्थ्य नहीं रखता, इसीलिये सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-९३ क्या ईश्वर कर्मों का फल अनन्त नही दे सकता ?

उत्तर—नहीं ! ईश्वर न्यायकारी है। सत्य सत्य न्याय का तकाजा है कि जिसने जितना जैसा कर्म किया है उसको उतना वैसा ही फल दिया जाय। पूर्व प्रश्न में यह बताया जा चुका है कि जीवों के कर्म सान्त होते हैं। सान्त कर्मों का अनन्त फल देना सत्य न्याय नहीं अन्याय है जो कि ईश्वर के स्वभाव के सर्वथा विपरीत है अतः ईश्वर कर्मों का फल अनन्त नहीं दे सकता।

चतुर्दश समुल्लास में महर्षि का स्पष्ट कथन है:—"ज़ो कर्म अनन्त नहीं हैं उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है।" एकादश समु० में इस प्रश्न का कि परमेश्वर दयालु है ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा, उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं:—'ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाय और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा थोड़े से सत्कर्म का अनन्त फल परमेश्वर दे देगा ऐसी बातों से धर्म की हानि और पाप कर्मों की वृद्धि होती है।"

प्र०-९४ कर्म की उत्पत्ति अथवा आरम्भ कब से है ?

उत्तर—देह और आत्मा का संयोग होने से कर्म होते हैं। देह और जीव का संयोग सृष्टि उत्पति पर ही होती है। इस प्रकार कर्म भी सृष्टि उत्पत्ति के पश्चात ही होते हैं अर्थात् जब मनुष्य उत्पन्न हो जाते हैं। सृष्टि और प्रलय का चक्र प्रवाह से अनादि है इसी प्रकार जन्म और मरण का चक्र भी प्रवाह से अनादि है। जन्म और मरण प्रवाह से अनादि होने के नाते कर्म भी प्रवाह से अनादि है। महर्षि स० प्र० एकादश समु० में लिखते हैः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०-८८ कर्म का बन्धन कब छूटता है ?

उत्तर:– जब कर्त्ता आसक्ति रहित हो, फल की आशा त्याग केवल कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करता है तब वासना स्वत: ही छूट जाया करती है। वासना के छूट जाने से कर्म बन्धन भी छूट जाते हैं। और जिस महामानव के कर्म बन्धन छूट जाते हैं वही जीवन मुक्त कहाता है।

इस सम्बन्ध में प्रो० सत्य व्रत जी सिद्धान्तालंकार अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार (पृष्ठ २४० पर) लिखते हैं: "मानसिक संवेगों का विश्लेषण करने से संवेग नष्ट हो जाता है। इसलिए कर्म का बन्धन नहीं पड़ता।

कर्म में से फल की आसक्ति हटा लेने से कर्म का दोष से मिट जाता है और फिर कर्म बन्धन का कारण नहीं रहता। इसके अतिरिक्त कर्म के बन्धन को काटने का दूसरा उपाय कोई नहीं।

प्र०-८९ क्या हम अपने कर्म बन्धन स्वयं काट सकते हैं ?

उत्तर अवश्य काट सकते हैं जब बन्धन बांधे हमने हैं तो काटेगा कौन ? पुरुषार्थ द्वारा कर्म बन्धन काटा जा सकता है इसमें कोई संशय नहीं। इस सम्बन्ध में प्रो० सत्य व्रत जी उपर्युक्त पुस्तक में लिखते हैं:–'वैदिक विचारधारा यह है कि हम इसे शुरु में भी काट सकते थे, बीच में भी काट सकते थे, अन्त में भी काट सकते थे, जब चाहते इस चक्र में से निकल सकते थे क्योंकि हम ईंट-पत्थर नहीं हैं. प्रकृति तत्व नहीं है आत्म-तत्व है स्वतन्त्रता आत्म-तत्व का जन्म सिद्ध गुण है।"

प्र०-९० कर्म बन्धन कैसे काटे जा सकते हैं ?

उत्तर – जैसे कांटे से कांटा निकाला जाता है और लोहे से लोहा काटा जाता है वैसे ही कर्म से कर्म के बन्धन भी काटे जाते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर शर्त यह है कि वे कर्म विवेक-पूर्वक किये जाने चाहिये। 'मननान्मनुष्य:' के अनुसार मनन करने वाला होने से ही हम मनुष्य हैं। वस्तुत: मनुष्य है वही ही जो विवेकपूर्ण कर्म करता है। निरुक्तकार का कथन है—'मत्वा कर्माणि सीव्यति इति मनुष्य:। पर जब हम विषयों में फँस जाते हैं तो हमारी विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है और विवेक बुद्धि के नष्ट हो जाने से मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता। गीता में ठीक ही लिखा है:—

ध्यायतो विषयान् पुंस: संगस्तेषूपजायते,
संगात् संजायते काम: कामात् क्रोधोभिजायते।
क्रोधात् भवति संमोह: संमोहात् स्मृति विभ्रव:
स्मृति संशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

विषयों का ध्यान करते करते मनुष्य का उसके प्रति सग और आकर्षण हो जाता है, आकर्षण से उन्हें प्राप्त करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो उठती है और उस इच्छा के पूर्ण न होने पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्रोध से मोह और मोह से बुद्धि का नाश होता है और बूद्धि के नाश से मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। इन विषयों को वश में करने का उपाय भी महात्मा विदुर ने महाभारत में बताया है।

जयेत् कर्दयं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम। (उद्योग पर्व) अर्थात् क्रोध को अक्रोध से, बुराई को भलाई से, कृपणता को उदारता, से झूठ को सत्य से जीता जा सकता है। ऐसा करने से कर्म का बन्धन नहीं पड़ता और कर्म-चक्र टूट जाता है।

प्र०-९१ क्या मोक्ष की प्राप्ति भी कर्मों के फलस्वरूप होती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था फिर यह अभ्यास उस बालक को कब हुआ ? निश्चय ही यह पूर्व जन्मों का अभ्यास है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वदादि भाष्य भूमिका तथा सत्य धर्म विचार (मेला चाँदापुर में युक्ति युक्त ढंग से पुनर्जन्म की सिद्धि की है पाठकों को उपरोक्त ग्रन्थों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए विस्तार भय से वे सब प्रमाण यहाँ उपस्थित नहीं किये जा सकते। इसके अतिरिक्त पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ने कुलियात आर्य मुसाफिर में, पं० नन्द किशोर विद्यालंकार ने पुनर्जन्म नामक पुस्तक में, प० राजेन्द्र जी ने पूर्वजन्म समृति नामक पुस्तक में, पं० यशः पाल सिद्धान्तालंकार में वैदिक सिद्धांत नामक पुस्तक में एवं अन्य अनेकों लेखकों ने अपनी पुस्तकों में पुनर्जन्म की सप्रमाण युक्ति युक्त सिद्धि की है जिज्ञासु पाठक इन सब ग्रन्थों का आलोकन कर लाभ उठा सकते हैं।

प्र०-९७ आपने पूर्व प्रश्न में लिखा है कि कुछ कर्मों का फल इस जन्म में एवं कुछ कर्मों का फल अगले जन्म में मिलता है। परन्तु स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी अखिलानन्द, पं० ओम प्रकाश शास्त्री आदि आर्य विद्वानों की मान्यता है कि वर्तमान जन्म में किये गये कर्मों का फल अगले जन्म में मिलेगा। इसमें कौन सी मान्यता ऋपिनुकूल है ?

उत्तर– इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्न संख्या में पर्याप्त लिखा जा चुका है फिर भी यहाँ महर्षि के एक दो प्रमाण प्रस्तुत है जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि वतमान कर्मों का फल इस जन्म में भी मिल जाता है एवं अगले जन्म में भी। एकादश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुल्लास में महर्षि प्रश्नोत्तर रूप में लिखते हैं:—
प्रश्न-दान के फल यहाँ होते हैं वा परलोक में ?
उत्तर – सर्वत्र होते हैं।"

२५ अगस्त सन् १८७९ को पादरी टी० जे० स्काट के साथ पुनर्जन्म सम्बन्धी लिखित शास्त्रार्थ में महर्षि लिखते हैं:–क्योंकि (मनुष्य) क्रियमाण कर्म नये-नये करता जाता है उनका संचित और प्रारब्ध भी नया-नया होता चला जाता है।" यदि नवीन कर्मों का फल इस जन्म में न मिलता होता तो महर्षि केवल इतना ही लिखते कि संचित भी नया-नया होता चला जाता है।' पर महर्षि सचित और प्रारब्ध दोनों का नया नया होना मानते हैं। जिन कर्मों का फल इसी जन्म में मिलना होता है वे प्रारब्ध में शामिल कर दिये जाते हैं। स्मरण रहे कि कर्मो की फलोन्मुख स्थिति का नाम ही प्रारब्ध है। अत: स्पष्ट है कि कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जिनका फल वर्तमान जीवन में भी मिल जाया करता है। पाठक स्वयं विचारें कि गर्भादान कर्म का फल इस जन्म में मिलता है या भावी जन्म में ?

प्र०-९८ क्या ग्रहों का भी हमारे कर्मों से कुछ सम्बन्ध है?
उत्तर ग्रहों का हमारे कर्मों से अथवा कर्म फल से कोई सम्बन्ध नहीं। सुख दुःख ग्रहों की गति से नहीं कर्मों की गति से होता है। यदि ग्रहों की गति से ही सुख दु:ख हो तो सभी को समान सुख दु.ख होना चाहिए पर ऐसा होता नहीं। पौराणिक कवि सूरदास को भी अन्तत: स्वीकार करना पड़ा कि ग्रहों की नहीं कर्मों की गति सच्ची है। यथा—

कर्म गति टारेहु नाहिं टरी
मुनि वशिष्ट से पंडित ज्ञानी शोध के लगन धरी
सीता हरण मरण दशरथ को वन में विपद परी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचिए तो सही कि पृथ्वी से ग्रह सहस्त्रों मील दूर हैं वे जीवों के ईश्वरीय न्यायानुसारी फल पर क्या प्रभाव डाल सकते हैं ज्योतिषी लोग जो हाथ देखकर अथवा जन्मपत्री द्वारा ग्रहों की चाल से सुख दुःख बताते हैं वह सब कपोल कल्पित है। उर्दू के एक कवि ने ऐसे ज्योतिषि पर क्या सुन्दर फबती कसी है—

अन्जुम शनास को भी खलल है दिमाग का।
पूछे अगर ज़मीं की कहे आसमान की ॥

महर्षि एकादश समुल्लास में स्पष्ट लिखते हैं कि "कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोगने में कारण नहीं।"

प्र०-९९ क्या ईश्वर को भी कर्म फल मिलता है ?

उत्तर—नहीं। ईश्वर कर्म फल से परे हैं। योगदर्शन समाधि पाद २४ के अनुसार ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इनसे रहित है। इसी कारण से ईश्वर पुरुष विशेष है। या यूँ कहिये कि इन्हीं विशेषताओं वाले पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर अजन्मा, निर्विकार, सब अन्यायों से पृथक रहने वाला तथा कर्मों का नियामक है भोक्ता नहीं। इस लिए ईश्वर को कर्म-फल नहीं होता।

प्र०-१०० ईश्वर को कर्म फल क्यों नहीं ?

उत्तर—जैसा कि पूर्व प्रश्न में लिखा जा चुका है ईश्वर पुरुष विशेष है, पुरुष जीव नहीं, जो कि क्लेश, कर्म, उसके फल और वासना से परे है। ऐसे पुरुष विशेष को कर्म फल कैसा ? कर्म फल उसको ही मिला करता है कि जिसके सन्मुख विधि और निषेध दोनों विकल्प हों एवं जो उनमें से किसी को भी करने में स्वतन्त्र हो। चाहे करे, न करे या विपरीत करे। परन्तु ईश्वर में यह बात नहीं घटती। वह अन्यथा तो कर ही नहीं सकता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कर्त्तव्य कर्म न करे ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं। फिर उसके सम्मुख कोई विकल्प है ही नहीं। विधि और निषेध अल्पज्ञ जीवों के लिये हैं सर्वज्ञ ईश्वर के लिये नहीं। ईश्वर पूर्ण-काम है। उसे कोई कामना ही नहीं। उसमें कोई न्यूनता भी नहीं। कर्म फल सुधार एवं उन्नति के लिए दिया जाता है। ईश्वर में कोई विकार होता ही नहीं तो सुधार कैसा? फिर कर्म फल कर्त्ता स्वयं नहीं ले लिया करता। कर्म भी जड़ होने से फल स्वयं नहीं दे सकते। अतः ईश्वर स्वयं फल नहीं ले सकता। इस प्रकार यदि ईश्वर को भी कर्म फल की प्राप्ति मानी जावे तो ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव, ज्ञान, बल और प्राक्रम में बड़ा कोई और ईश्वर होना चाहिये। पुनः उसको कर्म फल भुगाते वाला एक और। इस प्रकार एक न समाप्त होने वाली शृंखला प्रारम्भ हो जावेगी। जो कि एक क्लिष्ट कल्पना है। अतः ईश्वर को कर्म फल नहीं होता।

● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक प्रतिवेदन सन् १९७६

आर्य समाज हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद की स्थापना काल (१९५०) से लेकर सन् १९७५ तक का प्रगति का विवरण रजत जयन्ती दीपिका १९७५ में प्रकाशित हो चुका है इस वर्ष का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

पदाधिकारी

प्रधान—श्री रामप्रसाद गुप्त

प्रचार अधिष्ठाता—श्री हंसराज जी

उप प्रधान—श्री देवसेन दुग्गल, प्रेमचन्द डोगरा, श्रीमती कौशल्या कपूर।

मंत्री—श्री जगदीश चन्द्र राली।

उप मंत्री—श्री यशपाल आर्य बन्धु, श्री देवी सिंह श्री सोहन लाल शर्मा

प्रचार मंत्री—श्री गोविन्द राम आर्य पुरोहित।

कोषाध्यक्ष—श्री महावीर सिंह।

पुस्तकाध्यक्ष—श्री अरविन्द कुमार सहगल।

आय व्यय परीक्षक- श्री रामाश्रय लाल।

ऋषि बोधोत्सव—इस वर्ष ऋषि बोध उत्सव दिनांक २८-२-७६ को समारोह पूर्वक मनाया गया, दो दिन प्रभात फेरी निकाली गयी। इस अवसर पर गायत्री महायज्ञ श्री प्रेमचन्द डोगरा द्वारा किया गया प्रीति भोज का भी आयोजन किया गया श्री प्रेमचन्द डोगरा ने प्रीतिभोज के लिए ४००) रुपये दान स्वरूप प्रदान किये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशियों को साहित्य भेंट—

देहली में सार्वदेशिक आर्य प्रतितिधि सभा द्वारा आयोजित आर्य समाज स्थापना शताब्दी सम्मेलन (२५ दिसम्बर ७५ से २८ दिसम्बर ७५ तक) में भाग लेने के लिए अपनी आर्य समाज के सदस्यों का एक दल श्री यशपाल आर्य बन्धु के साथ देहली गया। श्री यशपाल आर्य बन्धु ने सिंगापुर मारीशस, बर्मा तथा दक्षिणी अफ्रीकी देशों से पधारे आर्य भाइयों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर अपनी आर्य समाज द्वारा प्रकाशित साहित्य तथा अन्य क्रीत साहित्य भेंट किया। जिसे आगन्तुक महानुभावों ने बड़ी कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया। मारीशस से पधारे आर्य भाइयों ने भी वहाँ का प्रकाशित साहित्य आर्य बन्धु को समाज के लिए भेंट किया।

गढ़वाल प्रचार—

श्री पं० सत्यदेव जी स्नातक के सद्प्रयत्नों से गढ़वाल में वेद प्रचार की योजना बनाई गयी जहां ईसाई पादरियों ने अपना जाल बिछा रखा था, अपनी आर्य समाज ने इस दिशा में पहल की एवं ५००) रुपये का साहित्य पंडित सत्यदेव द्वारा लिखित प्रकाशित कराकर भेंट किया। अपनी आर्य समाज के ही प्रयत्नों का सुफल है कि अब गढ़वाल में वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य कई जिलों की आर्य उपप्रतिनिधि सभाओं ने मिलकर उठाया है परिणाम स्वरूप दुगड्डा में विशाल आर्य सम्मेलन का आयोजन हुआ है।

आर्य विद्वानों का पदार्पण—

अपनी आर्य समाज में समय समय पर विभिन्न आर्य विद्वान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पधारते रहे और प्रचार का समुचित आयोजन किया गया। पधारने वाले महानुभावों के नाम हैं स्वामी विनयानन्द जी, स्वामी विज्ञानानन्द जी, पं० वेद मुनि जी वानप्रस्थी, श्री वेद कुमार जी वेदालंकार, आचार्य बल्देव अग्निहोत्री, पं० ज्ञानेन्द्र देव सूफी, श्री रमेश चन्द्र 'आर्य गवेषक' प० सत्यदेव स्नातक, पं० ज्ञान प्रकाश शर्मा श्री ध्यान सिंह जी, श्री रामलाल जी, श्री गोविन्द सिंह आर्य श्री मथुरालाल शाह (अल्मोड़ा), श्री देशबन्धु आर्य वानप्रस्थी आदि।

आर्य पुस्तकालय—

इस वर्ष आर्य समाज के पुस्तकालय में वैदिक साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर प्रभूत साहित्य क्रय किया गया। श्री पं० देशबन्धु आर्य वान प्रस्थी ने कृपा कर आर्य समाज को चारों वेद सहिता पुस्तकालय हेतु भेंट किये। श्री अरविन्द कुमार सहगल श्री सुरेश सिंह, अरविन्द कुमार गुप्ता तथा जितेन्द्र व्यास ने आर्य पुस्तकालय को नवीन रुप प्रदान किया। श्री वेदप्रकाश जी व्यास तथा उनके भाइयों ने अपने पूज्य पिता श्री श्रीराम व्यास की पुण्य स्मृति में आर्य समाज को एक स्टील की अलमारी दान में दी।

पत्र–पत्रिकायें—

इस वष अपनी आर्य समाज में निम्न पत्र पत्रिकायें नियमित रुप से आ रही है साप्ताहिक - सार्वदेशिक, आर्य मित्र जनज्ञान।

मासिक—

आर्य गजट, दयानन्द सन्देश परोपकारी, तपोभूमि, जनज्ञान यज्ञयोगज्योति, विश्वज्योति आर्य संसार तथा वैदिक लाइट (अंग्रेजी)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेद पारायण महायज्ञ—

आर्य समाज हरथला कालोनी के इतिहास में प्रथमवार १ जून ७६ से ११ जुलाई ७६ तक चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का भव्य आयोजन किया गया। जिसपर आर्य समाज, आर्य सदस्यों एवं अन्य यज्ञ प्रेमी महानुभावों का सामूहिक रुप से तीस हजार रुपये उठे। तप्ती ग्रीष्म ऋतु में यह आर्यों की परीक्षा की घड़ी थी। पूर्ण आहुति से दो दिन पूर्व गायत्री महायज्ञ का भी आयोजन किया गया। जिसमें गायत्री मन्त्र से एक लाख आहुतियाँ दी गयीं। पूर्ण आहुति पर विशाल ऋषि लंगर का आयोजन किया गया। लगर आर्य भाई बहिनों ने गायत्री पाठ करते हुये स्वय अपने हाथोंतैयार किया। इस अवसर पर दूर-दूर से आय नर-नारी पधारे और एक मेले का सा दृश्य था। इस यज्ञ के ब्रह्मा वैदिक भक्ति साधन आश्रम रोहतक के संचालक स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती जी थे। यद्यपि स्वामी जी की कतिपय मान्यतायें महर्षि दयानन्द की मान्यताओं से मेल नहीं खाती जिसके लिए कभी-कभी आर्य मित्र, दयानन्द सन्देश आर्य संसार तथा परोपकारी जैसी प्रसिद्ध आर्य पत्रिकाओं में उनकी तीखी आलोचना भी की जाती रही है। इतने पर भी हमारे विचार में पञ्चमहायज्ञों के प्रचार का जितना कार्य अकेले स्वामी जी ने किया है उतना अन्य किसी ने नहीं किया। श्री आर्य भिक्षु जी, भक्त जयदेव जी आचार्य बलदेवाग्निहोत्री, तथा आर्य पुरोहित गोविन्द राम जी वेद पाठी थे। श्री रामप्रसाद गुप्त, श्री आर. एल कपूर, चौ० जगवीरसिंह श्री सेवाराम जी तथा अन्य कई महानुभावों ने यजमान पद सुशोभित किया। श्रीमती पुष्पा रानी, श्रीमती पुष्पा नारंग, श्रीमती स्वर्णलता दुग्गल, श्री कर्मवीर जी साधक, श्री सेवाराम, चौ० जगवीर सिंह तथा दो-दो चार-चार दिन के लिए प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी सदस्य तथा अन्य यज्ञ प्रेमी महानुभाव व्रती रहे। चौ० जगवीर सिंह सपत्नीक, महा० कर्मवीर जी साधक (पूर्व याचक जी), श्री देवीसिंह तथा आर्य बन्धु जी के नेतृत्व में आर्य कुमारों का भरपूर सहयोग रहा।

दैनिक सत्संग—

अपनी आर्य समाज द्वारा संचालित दैनिक तीन सत्संग, प्रातः सायं आर्य समाज मन्दिर में तथा गाँधी पार्क में अबाध गति से चलता रहा। रविवारीय साप्ताहिक सत्संग अपनी भव्यता के कारण आकर्षण का केन्द्र रहा।

परीक्षा केन्द्र—

इस वर्ष अपना आर्य समाज मन्दिर आर्य युवक परिषद द्वारा आयोजित सत्यार्थ प्रकाश परीक्षाओं का केन्द्र बना। केन्द्राध्यक्ष श्री जगदीश चन्द्र राली बने।

नवीन सदस्य-

इस वर्ष निम्न महानुभावों ने इस आर्य समाज की सदस्यता अंगीकार की।

श्री तिलक राज खन्ना, श्री मनोहर लाल बांगिया, श्री रामबहादुर सक्सेना, श्री हंसराज खन्ना, श्री वीरेन्द्र कुमार जी. श्री शिवनाथ सिंह जी, श्री सत्यपाल जी, श्री सुमेर सिंह. श्री दया राम जी, श्रीमती स्नेहलता खन्ना, कु० नीलम कत्याल, श्रीमती कौशल्या रानी कत्याल. श्रीमती विमला देवी, श्रीमती हीरा देवी, श्रीमती सुशीला देवी, कु० कुसुम बांगिया, श्रीमती शान्ति देवी। इस वर्ष अपनी आर्य समाज को निम्न महानुभावों की सदस्यता से वंचित रहना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रीराम जी व्यास का निधन के कारण एवं निम्न महानुभावों का स्थानान्तरण एवं अन्य निजी कारणों से श्री जगदीश चन्द्र धीर, श्री बच्चन लाल जी, श्री शिवस्वरूप सिंह, श्री राम कोमल भारती श्री वैद्यनाथ मिश्र, श्री प्रकाश चन्द्र शर्मा श्री सेवा राम जी, मनोज कुमार सालूजा, राजरानी सालूजा। इस प्रकार सदस्य संख्या १०५+१७—१२=११० रही।

साहित्य प्रकाशन—

आर्य समाज हरथला कालोनी द्वारा साहित्य प्रचार यज्ञ निरन्तर चल रहा है। इस वर्ष श्री सत्य देव जी स्नातक आर्य भजनोपदेशक द्वारा लिखित "सच्चा-धर्म" नामक पुस्तिका दो हजार की संख्या में प्रकाशित करा निःशुल्क वितरित की गई। और अब वार्षिकोत्सव पर "कर्म फल प्रश्नोत्तरी" प्रस्तुत है। जिसे मान्यवर आर्य बन्धु जी ने अपने पाँच वर्ष के गम्भीर स्वाध्याय एवं अथक परिश्रम से लिखा है और जिसे विद्वतवर आचार्य बलदेव जी अग्निहोत्री ने परिष्कृत, संशोधित तथा संवर्द्धित किया है। आर्य समाज हरथला कालोनी आप दोनों महानुभावों की कृतज्ञ है। कु० रागनी शर्मा जिसने इस पुस्तक की प्रेस प्रतिलिपि तैयार की साधुवाद एवं आशीर्वाद की पात्रा है। जिन जिन महानुभावों ने भी आर्य समाज हरथला कालोनी को जो जो सहयोग दिया है इस सबके लिये हम अति आभारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

सहयोगाकांक्षी

राम प्रसाद गुप्त — प्रधान

गोविन्द राम — आर्य पुरोहित

जगदीश चन्द्र राली — मंत्री

हंस राज — प्रचार-अधिष्ठाता

महाबीर सिंह — कोषाध्यक्ष

आर्य समाज, हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद।

कौन क्या कहता है ?

डा० भवानी लाल जी भारतीय, सम्पादक परोपकारी की सम्मति-- (परोपकारी नवम्बर-दिसम्बर-१९७४ पृष्ठ १४)

मृत्यु और उसका भय--

मृत्यु मानव जीवन की एक सुपरिचित किन्तु अत्यन्त अप्रिय कटु तथा पीड़ापूर्ण परिस्थिति है। वैदिक शास्त्रों में मृत्यु के इस भय को अभिनिवेश की संज्ञा दी है तथा उसे योगदर्शन ने पचक्लेशों में परिगणित किया है। भारतीय तत्व चिन्तन मनुष्य जीवन की समाप्ति को वस्त्र बदलने की सज्ञा देता है। अतः उसमें मृत्यु के भय को समाप्त करने की पूर्ण व्यवस्था भी है। लेखक ने इस दार्शनिक जटिल विषय को अत्यन्त रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। यदि आलोच्य पुस्तक को किसी मृत व्यक्ति के बन्धु बांधव पढ़े तो उन्हें निश्चय ही आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी। लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है।

मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है ?

लेखक ने अपने इस लघु निबंध में देश के सर्व विख्यात आन्दोलन आर्य समाज के विषय में अपने मन के मनोद्गार तत्परता के साथ व्यक्त किये हैं। आर्य समाज की लोकप्रियता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रौर उसके कारण, उद्देश्य, सत्य सिद्धांत, संस्थापक आदि शीर्षकों के अन्तर्गत लेखक ने आर्य समाज की एक प्रभावोत्पादक झांकी प्रस्तुत की है। लेखक की यह शुभाशंसा सर्वथा श्लाघनीय है—

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी
तावदार्यसमाजस्य कीर्त्तिर्भवतु भूतले।

रजत जयन्ती दीपिका—(परोपकारी फरवरी ७६)

आर्य समाज रेलवे कालोनी ने अपने रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में यह स्मारिका प्रकाशित की है। इसमें उक्त आर्य समाज ने अपनी प्रगति का विवरण तो दिया ही है, आर्य समाज विषयक कुछ उच्च कोटि के लेखों का संग्रह भी किया है। आर्य समाज हो क्यों? आर्य समाज क्या चाहता है? सत्यार्थ प्रकाश प्रशस्ति आदि लेख पठनीय और मननीय हैं। इस सुन्दर स्मारिका के सम्पादक श्री यशपाल जी आर्य बन्धु का परिश्रम सराहनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व को आर्य समाज की देन–

डा० राम प्रकाश
विभागाध्यक्ष रसायन विभाग
पंजाब विश्व विद्यालय, चण्डीगढ़।
२५–९–७५

ओम्
श्रद्धेय आर्य बन्धु

सस्नेह नमस्ते।

आर्य समाज स्थापना शताब्दी के पुनीत अवसर पर लिखीं आपकी पुस्तकें कुछ समय पूर्व मिलीं थीं। आपके सफल प्रयास पर हार्दिक बधाई। एक एक शब्द से ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाज के प्रति आपकी श्रद्धा का पता चलता है। आपका स्वाध्याय गहरा तथा कलम सशक्त है। ये पुस्तकें लिख कर आपने आर्य समाज की ठोस सेवा की है। मेरे विचार में आपको प्रत्येक सिद्धांत पर इसी प्रकार ट्रैक्ट लिखने चाहियें। इनसे आर्य समाज का बहुत प्रचार हो सकेगा।

योग्य सेवा।

विनीत—
राम प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमन संचय— शब्द चित्र दीपावली विशेषांक

२३ अक्तूबर १९७३

प्रस्तुत पुस्तक यथा नाम तथा गुण वाली कहावत चरितार्थ करती है। वास्तव में इसके अन्दर जीवन के महकते फूलों को कुछ इस प्रकार पिरोया गया है कि न केवल देखते ही बनता है अपितु विचारने को भी इनसे पाठक को प्रेरणा प्राप्त होती है।

श्री यशपाल आर्य बन्धु जी ने इन जीवन दिशा-निदेशन रुपी सुमनों को चुन चुन कर मानव-कल्याण हेतु इस पुस्तक में संचित करके एक विशेष स्थान पाठकों के अन्तः करण में बना लिया है, ऐसा मेरा विचार है।

उक्त पुस्तक प्रत्येक होनहार पाठक के लिए महत्व पूर्ण सामग्री रखती है और साथ ही अज्ञानता तथा अकर्मयता के गर्त में डूबे लोगों को भी प्रकाश एवं कर्मण्यता की दिशा की ओर ले जाने में सक्षम है।

आशा है जनता-जनार्दन से लेकर विज्ञ राजनीतिज्ञ तक इससे लाभ उठावेंगे।

खार मुरादाबादी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य समाज स्मारिका— आर्य मर्यादा साप्ताहिक
२६ नवम्बर १९७२

आर्य समाज ने अपने द्वारा किये गये कार्यों के स्मरणार्थ स्मारिका प्रकाशित की है। इसमें अन्य भी अनेक विचारणीय बातों का समावेश किया गया है। अपनी स्मारिका प्रकाशित करके आर्य समाज ने अच्छा कार्य किया है। हम एतदर्थ बधाई देते हैं। —श्री जगदेव सिंह सिद्धांती शास्त्री

हमारे अन्य प्रकाशन —

मृत्यु और उसका भय — लेखक-श्री यशपाल आर्य बन्धु
मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है ? ,, —श्री यशपाल आर्य बन्धु
विश्व को आर्य समाज की देन ,, — श्री यशपाल आर्य बन्धु
सुमन संचय ,, — श्री यशपाल आर्य बन्धु
आर्य समाज स्मारिका - सम्पादक श्री यशपाल आर्य बन्धु
रजत जयन्ती दीपिका सम्पादक - श्री यशपाल आर्य बन्धु
सच्चा धर्म लेखक–श्री सत्य देव जी स्नातक

आगामी प्रकाशन--

प्रार्थना विज्ञान.
ओंकार महिमा,
धर्म और विज्ञान,
मानव निर्माण और आर्य समाज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य-क्रम वार्षिकोत्सव सन् १९७६

प्रतियोगितायें: दिनांक १०-१०-७६ (रविवार) प्रात: ९-०० से ११-०० तक गायन प्रतियोगिता, मंत्र प्रतियोगिता।

निबन्ध प्रतियोगिता कक्षा ९ तक के विद्यार्थियों के लिए–विषय— "महर्षि दयानन्द की विशेषतायें।"

कक्षा १० तथा ऊपर की कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये :– "विश्व को आज भौतिकवाद की आवश्यकता है या आध्यात्मवाद की।"

उत्सव :–

दिनांक १७-१०-७६ (रविवार) से १९-१ -७६ (मंगलवार) तक नित्य प्रति :--

प्रात: ७-३० से १०-३० तक

मध्यान्ह : २-३० से ४-३० तक

रात्रि :-- ७-३० से १०-३० तक

महिला सम्मेलन रविवार दिनाँक १७-१०-७६ दोपहर २-३० से ४-३० तक

आर्य कुमार सम्मेलन तथा पुरस्कार वितरण समारोह मंगलवार दिनांक १९-१०-७६ दोपहर २-३० से ४-३० तक

आर्य सम्मेलन मंगलवार दिनांक १९-१०-७६ रात्रि ७-३० से १०-३० तक

आमन्त्रित विद्वान् –

१ आचार्य सत्य व्रत जी राजेश, प्राध्यापक वेद, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

२ प्रो० उत्तम चन्द जी शरर' एम. ए पानीपत।

३ आचार्य सत्य मित्र जी शास्त्री, बड़हलगज, गोरखपुर।

४ डा० सत्य प्रिय जी शास्त्री, अमरोहा।

५ श्री वेद कुमार जी वेदालंकार, नई दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ श्री रमेश चन्द्र जी आर्य गवेषक, एम. ए. कांठ।
७ श्री बृजपाल शर्मा जी 'कर्मठ' मुजफ्फरनगर।
८ श्री सत्यपाल सिंह जी आर्य।
९ श्री सत्यदेव जी स्नातक, अमरोहा।
१० श्री गोविन्द सिंह जी आर्य।

सूक्तियाँ —

कर्म वह आइना है जो हमारा स्वरुप हमें दिखा देता है।

— विनोबा भावे।

'केवल कर्म-हीन ही ऐसे हैं जो भाग्य को कोसते हैं और जिनके पास शिकायतों का बाहुल्य है।

— पं० नेहरू

थक-थक करके भी बार-बार कर्म का आरम्भ करना चाहिए। कर्मों को आरम्भ करने वाले मनुष्य को लक्ष्मी अवश्य सेवन करती है।

— भगवान मनु

'प्रारब्ध कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, किन्तु किये हुए कर्मों की ही एक अवस्था है, यदि मनुष्य पुरुषार्थ न करे तो प्रारब्ध बन ही नहीं सकता।

महा. नारायण स्वामी

समुद्र में गोता लगाने से यदि मोती हाथ न लगे तो यह न कहो कि समुद्र में मोती नहीं है। बार बार गोते लगाकर मोती ढूँढो तब सफलता मिलेगी।

— रामकृष्ण परमहंस

'पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिये कि जिससे सँचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगडते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

· महर्षि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With compliments from :

M/s Gupta & Brothers

MANUFACTURERS & EXPORTERS,

MORADABAD

GANESH ICE-Factory & Cold Storage

CHANDAUSI

Phone : 186

B. R. S. Gupta

Proprietors

Please remember :

Rajhans Pressure Cooker

Manufactured by :

Gupta Industries

Rishikul Road

MORADABAD

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Cable : Echkey

Phone : 3575

H. K. Metal Industries

MANUFACTURERS :

BRASS WARES

****

Rishikul Road,

MORADABAD.

8902

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 3192, 3011

With best compliments from :

Rawal Pindi Flour Mills Pvt. Ltd.

RAMPUR ROAD,

MORADABAD.

Managing Director

VED PRAKASH SALUJA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Phone : 27711
Grams : HIGHLAND

Bankers { Punjab National Ba
Bank of Baroda

8902

With compliments from :

HIGHLAND (INDIA)

Manufacturers of :–

- **Brass Art Wares**
- **E. P. N. S. Wares &**
- **Fancy Goods**

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति स्मृति संग्रह

RAJESH BHAWAN

Dr. Hira Singh Road, LUDHIANA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access on		14/7/94
Class on	Sharma	8.4.04
Cat on	Sharma	9.4.04
Tag etc	Sharma	13.02.04
Filing	Sharma	10.4.04
E.A.R.		
Any other		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमन संचय

संचयकर्ता श्री यशपाल आर्य बन्धु, प्रकाशक आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी, मुरादाबाद । इस सुमन संचय में भारतीय ऋषि गण, विद्वान् एवं योरोपीय विचारकों के श्रेष्ठतम तथा नैतिक आदर्शों के प्रेरणादायक वाक्यों को संग्रहीत किया गया है। आर्य समाज रेलवे हरथला कालोनी के शारदीय वार्षिकोत्सव (अक्टूबर १६७३) के अवसर पर प्रकाशित इस संचय के प्रयासों हेतु, आर्य समाज के अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं। अन्य आर्य समाजों को भी इससे प्रेरणा लेना चाहिए।

(आर्यमित्र ३ मार्च सन् १६७४) **बधाई** ।

श्री यशपाल जी ने अपनी हस्त लिखित पुस्तक, अभिनिवेश, मुझे पढ़ने के लिये दी जिसे मैंने आदि से अन्त तक पढ़ा। एक कठिन व नीरस विषय को बड़े परिश्रम से व्यवस्था पूर्वक लिखा है तथा बहुत से ग्रन्थों से और बहुत से उच्च कोटि के आधुनिक तथा प्राचीन विद्वानों के विचार व पद्य संग्रह किये हैं।

इस पुस्तक द्वारा बहुत सी प्रचलित भ्रान्तियों की निवृत्ति होगी और अकारण मृत्यु समय शोक मनाने वालों को सान्त्वना मिल सकेगी जिससे लेखक का श्रमसार्थक होगा।

मैं श्री यशपाल जी आर्य बन्धु को इस पुस्तक के लिखने पर हार्दिक बधाई देता हूं। परमेश्वर ज्ञान स्वरुप उन्हें अपनी आशीर्वाद प्रदान करे।

ह०-दयानन्द

(महा० दयानन्द वानप्रस्थी)

अध्यक्ष

२-६-७४

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

तपोवन, देहरादून ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar